समरथ

सितम्बर - अक्टूबर 2005 नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

पिछले दो वर्षों से हम भारत की साझी विरासत पर आपको सामग्री उपलब्ध कराते रहे हैं, इस दौरान हमने पाया कि साझापन केवल हमारे देश की सरहदों तक ही सीमित नही है। सरहदों के परे पूरे दक्षिण एशिया में हम सबका बहुत कुछ साझा है जो पूरे दक्षिण एशिया की साझी विरासत है। इसी सोच के तहत गत माह दक्षिण एशिया की साझी विरासत को चिन्हित कर, उसे पूरे दक्षिण एशिया में तनाव और टकराव के विरूद्ध, एक अहिंसक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने का संकल्प लिया गया। फलस्वरूप साउथ एशियन कम्पोज़िट हेरीटेज ('सच') न्यूज़लेटर का पहला अंक अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। दक्षिण एशिया की ऐसी साझी विरासत जिसे हम हर पल जीते हैं, ऐसी साझी विरासत, जिस पर हम अपना अधिकार मानते हैं।

अलग करने, तोड़ने व तनाव पैदा करने के कारणों से कहीं, ज़्यादा ऐसे पक्ष है जो हमें आपस में जोड़ने में सक्षम हैं। कम ही हमें इन पक्षों और हमारे बीच गहरी समानताओं के बारे में बताया जाता है। जाति, धर्म, जेंडर, नस्ल, समुदाय आदि के आधार पर तनाव को प्रोत्साहित किया जाता है। हमारी सोच इन्हीं दायरों में संकुचित रह जाती है। इन संकुचित दायरों को तोड़ने की क्षमता केवल हमारी साझी विरासत में है।

'सच' के पहले अंक में भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान की साझी विरासत को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है। लेकिन यह काफी नहीं है। आने वाले हर अंक के साथ हम साझी विरासत के विभिन्न रूपों को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। 'सच' न्यूज़लेटर के माध्यम से सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की साझी विरासत को पाठकों तक पहुंचाने का प्रयत्न होगा। ढ़ाका में आयोजित साझी विरासत पर कार्यशाला, के परिणामस्वरूप 'सच' को प्रकाशित करने का निर्णय, कार्यशाला में उपस्थित भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के साथियों ने सामूहिक रूप से लिया। 'सच' का प्रकाशन मूलतः अंग्रेजी भाषा में होगा लेकिन इसका संक्षिप्त स्वरूप क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद करने का निर्णय भी लिया गया। सहभागियों ने एक वेब साइट, बनाने का भी फैसला लिया, जिसका नाम है sach-online.org

'सच' के प्रकाशन और संयोजन की जिम्मेदारी आई.एस.डी. को सौंपी गयी। पहले अंक की एक हज़ार प्रतियां छपीं और सभी सदस्य संगठनों को ज़रूरत के अनुसार वितरित की गयी।

इस अंक में हम आपको 'सच' में छपे बांग्लादेश की जानी-मानी सामाजिक कार्यकर्ता जहानआरा परवीन के एक इन्टरव्यू से रूबरू करा रहे हैं। अगले अंकों में भी हमारा ये प्रयास जारी रहेगा।

हर अंक की तरह इस अंक की शुरूआत हम एक कविता के साथ कर रहे हैं। फासीवाद किस तरह बिना आहट हमारे समाज में दाखिल होकर ज़हर घोलना शुरू कर देता है, इसकी तस्वीर इस कविता में देखी जा सकती है।

कोमोरी कोको

उठो जापान

वह सामने के दरवाज़े से नहीं आता
और न दरवाज़े की घंटी बजाता
जब पिता हों व्यस्त अपने व्यापार में,
और माँ बस इतना कहे कि ''पढ़ो'',
जब बच्चे खो बैठें दोस्तों को,
भूल जाए आपस की एकता,
मन हो उठे उनका उद्विग्न, और
हिरा जाए सोचने की क्षमता,
जब घर के गुलशन में
बाकी न बचे रिश्तों की महक
तब धीरे से अपने
बीज बो देता है फासीवाद।
वह आता है मुस्कान के साथ,
बच्चों की पत्रिकाओं और खिलौनों के साथ
''माँ, नाराज़ क्यों होती हो
ये तो सिर्फ खिलौने हैं''
जब ऐसा कहने लगें बच्चे, और
जमा होती रहें प्लास्टिक की पिस्तौलें, मॉडल
जब स्कूल की सामग्री पर भी
छपी हों युद्ध की तस्वीरें, कहानियां
पेंसिल का इस्तेमाल हो मिसाइल की तरह
उड़ने के लिए तैयार
वह आता है
वह आता है विजेता की मुद्रा में
''बच्चों पुलिस से सहयोग करो,
अपराध से दूर रहो,
अच्छी-अच्छी बातें सीखो, करो,
अच्छा है, बन जाओ स्काउट और
बेहतर होगा, कि बाद में
फौज़ में शामिल हो जाओ''
कहता है वह इस तरह।
हमें ज़रूरत है नैतिक शिक्षा की,
साम्राज्य की शिक्षा नीति थी उत्तम,
बच्चों को पढ़ाना है बेहद ज़रूरी
कि यह है परिवार की ज़िम्मेदारी
और इस तरह
माता-पिता की चिंताएं ओढ़कर
आ जाता है फासीवाद

बोलने की आज़ादी
खत्म नहीं होती एकाएक
दसियों बरस लगते हैं
झूठ को सच बनाने में कि
हमें आण्विक हथियार नहीं चाहिए,
कि यहां हथियारों के आयात पर है प्रतिबंध
कि सिर्फ अमेरिका को है इसमें छूट
कि इस तरह छुपा लिया जाता है सच
अगर हम छापे के अक्षर को
देख सकते हैं साफ-साफ तो
कोशिश करें कि हम
सच को भी देख पाए साफ-साफ
कि हमारी पथराई आंखें,
रोज़मर्रा की ज़िंदगी से मुर्झाई आंखें
उन्हें खोलें सुबह की रौशनी की तरह
कि हमारी नाक सूंघ सके फासीवाद को
और हमारे शब्द हों प्रबल और निर्भीक
कि रोक सकें फासीवाद को
कि विवेक के ये शब्द गहरे धंस जाएं
जनता के हृदय में।

अभी ही है समय हमारे लिए
कि प्यार और ज़िंदगी के बारे में सोचें
अभी ही है समय हमारे लिए
कि समझ लें अपनी ज़िम्मेदारी
बचा लें जापान की शांति
और दुनिया का सुखचैन
अभी ही है समय हमारे लिए
कि हम फैसला लेने में तत्पर हों
कि सच की आंखों में निर्भय झांकें
और बेहिचक कहें सही-सही बात

उठो जापान
तैयार करो अपने आप को
और जल्दी करो
कि कहीं फिर पछताना न पड़े

अंग्रेजी रूपांतर – **मिसाको हिमेनो**
हिंदी रूपांतर – **ललित सुरजन**
(When we say Hiroshima 1999 से साभार)
अक्षर पर्व से साभार

यू.पी.ए. सरकार और न्यूनतम साझा कार्यक्रम (एक अवलोकन)

डॉ. योगेश भटनागर

मई 2004 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को आम आदमी ने वोट इसलिये दिया था क्योंकि कांग्रेस ने विकास के साथ-साथ रोजगार देने का वादा किया था। दलितों और महिलाओं ने इसलिये वोट दिया था कि कांग्रेस उन्हें सुरक्षा देगी। अल्पसंख्यकों ने इसलिये वोट दिया था कि कांग्रेस समाज का धर्मनिरपेक्षीकरण बढ़ायेगी और सांप्रदायिककरण को रोकेगी। मतदाता ने काँग्रेस को इसलिये भी वोट दिया था कि आर्थिक सुधार मानवीय चेहरा लिये होंगे, वो इतिहास का पुर्नलेखन रोकेगी, शिक्षा का सांप्रदायिककरण बंद करेगी, संघ परिवार से जुड़े हुए गर्वनरों, डायरेक्टरों और उच्च पदासिन अधिकारियों को हटायेगी और हिंदुत्ववादी कट्टरपंथी ताकतों को बढ़ने से रोकेगी। इन्हीं सब के आधार पर न्यूनतम साझा कार्यक्रम (न्यू.सा.का) बनाया गया था।

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अपनी सरकार के एक साल के काम पर दस में से छह अंक दिये हैं जो दूर से देखने में बहुत ही तसल्लीबख्श लगते हैं। ज़रा गौर से देखें तो साफ ज़ाहिर होगा कि सरकार को निजी कंपनियों, धनी वर्ग की मदद, और विदेशी विनिवेश को बढ़ावा देने में दस में से दस अंक मिलते हैं और आम आदमी से जुड़ी नीतियों पर दस में से दो इस तरह बीस में बारह अंक तो औसत छह अंक बन जाते हैं। आइये देखते हैं कि पिछले डेढ़ साल में यूपीए सरकार की आर्थिक, सामाजिक नीतियां किस प्रकार की रही हैं। क्या वो न्यू.सा.का. को अमल में ला रही है?

रोज़गार : रोज़गार के क्षेत्र की बात करें तो आंकड़े कुछ इस तरह के हैंः 1993-1994 में बेरोज़गारी की दर 6.0 प्रतिशत थी जो 1999-2000, 7.3 प्रतिशत हो गयी और माना जा रहा है कि 2004-2005 में ये बढ़कर 9.3 प्रतिशत हो गयी है। रोज़गार के मामले में असंगठित क्षेत्र में हालत काफी खराब है। 39 करोड़ 70 लाख श्रमिकों में से 36 करोड़ 90 लाख श्रमिक यानि कि 92 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में हैं। न्यू.सा.का. में वादा किया था कि असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिये राष्ट्रीय कोष बनाया जायेगा, पेंशन, स्वास्थ्य और सुरक्षा देने संबंधित कानून बनाये जायेंगे पर अभी तक ऐसा कुछ नहीं हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी ने एक भयंकर रूप अख्तियार कर लिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी 5.23 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है जबकि भोजन की उपलब्धता (एवेलेबिल्टी) 12.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कम हो रही है। यह बड़े ताज्जुब की बात है कि सरकारी आंकड़े हर साल गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में गिरावट दिखा रहे हैं। एक सर्वेक्षण के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्रों में 74 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रह रही है।

एक अर्थशास्त्री का कहना है कि अगर रोज़गार गारंटी अधिनियम की रूपरेखा सही ढंग से तैयार की जाये तो पूरे देश में इसको लागू करने के लिये 24000 करोड़ रूपये से कम खर्चा होगा यानि भारत के सकल घरेलू उत्पाद का एक प्रतिशत से भी कम। इसके बरअक्स, अकेले अदत्त (अनरिक्वर्ड) करों की राशि 90,000 रूपये करोड़ तक पहुंच गयी है। लेकिन यूपीए सरकार ने उसे वसूल करने के लिये कुछ नहीं किया। जो लोग रोज़गार गारंटी अधिनियम को लागू करने के साथ सब्सिडियों का कम करने या मुनाफा कमा रहे सरकारी क्षेत्रें के उपक्रमों में विनिवेश जैसी शर्तें लगा रहे हैं वे लोग असल में नागरिक को सामाजिक सुरक्षा के उपाय प्रदान करने के खिलाफ हैं और आम आदमी के हित की बात नहीं कर रहे हैं।

काफी ऊहापोह के बाद लोकसभा और राज्यसभा ने ग्रामीण रोज़गार गारंटी बिल पास कर दिया। इसके तहत गांवों के गरीब परिवारों को सरकार साल में कम से कम 100 दिनों का रोज़गार सुलभ करवायेगी। जिन 200 जिलों में ये कानून लागू होगा उनमें से 150 जिलों में काम के बदले अनाज की योजना चल रही है। पाँच साल में ये योजना सभी 600 जिलों में लागू हो जायेगी। इस कानून को लागू करने के लिये 40,000 करोड़ रूपये सलाना खर्च होंगे जिसमें केंद्र का हिस्सा 90 प्रतिशत और राज्यों का 10 प्रतिशत होगा। इसमें कोई शक नहीं है कि ये कानून अपने आप में एक ऐतिहासिक निर्णय है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि यूपीए सरकार को निजी कंपनियों और धनी वर्ग की मदद करने वाली नीतियों पर दस में दस अंक मिलते हैं, ये नीचे लिखी नीतियों से साफ हो जाता हैः

कर प्रणाली - यूपीए सरकार कर प्रणाली में सुधारों के स्तर पर पूरी तरह नाकामयाब रही है। फ्रिंजबेनीफिट टैक्स, कैश विड्राल पर टैक्स, आयकर से सभी रियायतें खत्म करना ये सब राष्ट्रीय न्यू. सा.का. के खिलाफ हैं और आम आदमी और मध्यवर्ग के हितों को पूरी तरह ठेस पहुंचाता है।

निजी कंपनियाँ और भारतीय सार्वजनिक बैंक - भारतीय सार्वजनिक बैंकों ने इस दौरान पूरी तरह निजी कंपनियों की मदद की। बैंकों ने इस साल 2004-2005 में 45,000 करोड़ रूपये के गैर

निष्पादित अस्तियों या अनर्जक परिसंपत्तियों (नान पर्फार्मींग एसेटस) में फंसे उधार ये कहकर बट्टे खाते (राइट आफ) में डाल दिये के वे 'खराब उधार' (बैडलोन्स) हैं यानि ऐसे उधार जिनकी वसूली नहीं हो सकती। बैंकों ने इतनी बड़ी रकम छोटी और बड़ी निजी कंपनियों को बिना किसी गारंटी या परिसंपत्ति को गिरवी रखे दी, जो अपने आप में गैरकानूनी है। भाजपा-एनडीए के राज में इस तरह के उधार बड़े पैमाने पर दिये गये थे जो समझ में आता है पर यूपीए सरकार के राज में भी ये लूट जारी है जो समझ से बाहर है। 2004 में गैर निष्पादित अस्तियाँ 16 प्रतिशत बढ़ीं और यूपीए राज में इस प्रतिशत में गिरावट नहीं आयी है। ये बात गौर करने लायक है कि जब भी यूपीए सरकार के सामने आम आदमी से जुड़ी नीतियों या योजनाओं के लिये पैसा (फन्डस) मांगा जाता है तो कह दिया जाता है कि पैसा (फन्डस) नहीं है।

ये 45000 करोड़ अगर बैंको ने बट्टे खाते में न डाले होते और आर्थिक विकास के लिये देश को मिलते तो देखिये यूपीए सरकार क्या-क्या कर सकती थीः सरकार रोज़गार गारंटी योजना को पूरी तरह सारे देश में चला सकती थी। रोज़गार गारंटी योजना पर कुल मिलाकर 25,000 करोड़ खर्च होते और बची हुई रकम ग्रामीण विकास में लगा सकती थी या इसी पैसे से सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत 2 रूपये प्रति किलो पर 400 मीलियन भूखे लोगों को चावल दे सकती थी। अगर भूखे लोगों को 1/2 किलो प्रति व्यक्ति पूरे साल चावल दिया जाता तो तब भी 9,000 करोड़ रूपये बच जाते यानि कुल मिलाकर 36,000 करोड़ रूपये खर्च होते। बाकी बचे ये 9000 करोड़ उत्पाद शक्ति बढ़ाने में लगाये जा सकते थे या फिर जैसा कि न्यू.सा.का. में कहा गया था कि सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जायेगा, ये पैसा शिक्षा पर खर्च किया जा सकता था। आज सरकार शिक्षा पर 4 प्रतिशत खर्च कर रही है अगर 6 प्रतिशत करती तो करीब 50,000 करोड़ का बजट होता तो 2 प्रतिशत का फर्क इस 45,000 करोड़ में से लिया जा सकता था। या यही पैसा सरकार अगर बिजली के उत्पादन में लगाती तो इन 45,000 करोड़ रूपयों से 15,000 मेगावाट बिजली पैदा हो सकती थी। इसका मतलब देश की बिजली की कमी पूरी तरह खत्म ही नहीं हो जाती बल्कि हमारे पास 3000 मेगावाट बिजली बच भी जाती। अगर यही पैसा ट्रांसमीशन और वितरण की तकनीक के सुधार में लगाया जाता तो भी बिजली संबंधित समस्याएं पूरी तरह हल हो जातीं। या अगर न्यू.सा.का. के मुताबिक स्वास्थ्य सेवाओं पर सकल घरेलू उत्पाद का 2 प्रतिशत खर्च करने के वादे को पूरा किया जाता तो ये 45,000 करोड़ ये वादा पूरा कर सकते थे। आज राज्य और केंद्र दोनों मिलकर स्वास्थ्य सेवाओं पर 25000 करोड़ या सकल घरेलू उत्पाद का एक प्रतिशत खर्च करते हैं। इस तरह से हम देख सकते हैं कि अगर बैंकों ने 45,000 करोड़ रूपयों के उधार को बट्टे खाते में न डाला होता तो सरकार आम आदमी को किया गया कम से कम एक वादा तो पूरा कर सकती थी।

एक बात काबिले गौर है कि यही बैंक जो किसानों को 'थोड़े समय' (शार्टटर्म) के लिये उधार दे रहे हैं उन्हें चालाकी से 'लम्बे समय' के उधार (लॉग टर्म लोन्स) में तबदील कर रहे हैं। समय के साथ-साथ ज़्यादातर किसानों के लिये ये उधार बोझ बन जायेंगे और उन्हें या तो अपनी ज़मीन बेचकर उधार चुकाने होंगे या वे आत्महत्या करने को मजबूर हो जायेंगे। पिछले एक साल में कांग्रेस के सत्ता में आने के बाद आंध्र प्रदेश में 780 किसानों ने आत्महत्या की। महाराष्ट्र और कर्नाटक में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। एक तरफ बैकों ने निजी कम्पनियों को 'खराब उधार' दिये दूसरी तरफ इन्हीं सार्वजनिक बैंकों ने ग्रामीण उधार और कृषि में निवेश नहीं बढ़ाया। सच तो ये है कि सार्वजनिक बैंक गांवों में अपनी शाखाऐं बंद कर रहे हैं। 90 के दशक से गांवों में बैंकों की शाखाओं में गिरावट आयी है और आज भी ये अनुपात गिर रहा है। मिसाल के तौर पर 1990 में गांवों में कुल 35,000 शाखाएं थीं मतलब कुल शाखाओं का 58 प्रतिशत। आज 2005 में ये प्रतिशत 50 से भी कम रह गयी हैं। मतलब किसान एक बार फिर साहुकार के पंजे में फँस जायेगा। एक तरफ किसानों पर कर्ज़ का बोझ बढ़ रहा है दूसरी तरफ उसे उसकी फसल की ठीक कीमत नहीं मिल रही है ये गंभीर चिंता की बात है। एक किसान सभा द्वारा 26 परिवारों के वायनाद ज़िले (केरल) में किये सर्वेक्षण से पता लगा है कि उन पर 2 मिलियन रूपयों का कर्ज़ है यानि हर परिवार पर 82,000 रूपयों का कर्ज़ है। ज़्यादातर परिवारों के पास 1.4 एकड़ ज़मीन है मतलब छोटा किसान है। दूसरी बात जो सामने आयी वो ये है कि ये कर्ज़ निजी साहूकार से लिये गये हैं मतलब सूद की दरें काफी ऊँची हैं। पिछले एक साल में अकेले वायनाद ज़िले में 1300 आत्महत्याएँ रिकार्ड की गयी हैं। न्यू.सा. का. में किसान को सस्ती दरों पर उधार देने को वादा था। इस पर यूपीए सरकार ने अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया है।

यूपीए सरकार ने आम आदमी से जुड़ी बिगड़ी हुई सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बारे में कुछ नहीं किया है। इस सरकार को शेयर बाज़ार और सेन्सेक्स के उतार चढ़ाव में ज्यादा रूचि रहती है। वित्त मंत्री का कहना है कि जब तक सेन्सक्स 8000 का आंकड़ा पार नहीं करता तब तक उन्हें कोई फिक्र नहीं है। आज के आँकड़ा 8400 पार कर गया है पर वित्तमंत्री को कोई चिंता नहीं है। ये बात चिंताजनक है कि सारी मुम्बई पाँच दिन पानी में डूबी रही किसी किस्म का कोई कारोबार नहीं हुआ पर फिर भी सेन्सेक्स में उछाल कायम रहा। उतनी ही रूचि इसकी विदेशी निवेश, खदान, कारपोरेट टैक्स, खुदरे व्यापार और मुनाफा कमा रही सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश में है। इसने बीमा, टेलीक्म्यूनिकेशन और लोक उड्डयन के क्षेत्रों में सीधे विदेशी निवेश को बढ़ाया है। इन नीतियों में भाजपा-राजग नीतियां ही जारी रहती नज़र आ रही हैं उनसे कहीं कोई टूटन नहीं दिखाई पड़ रही है जो अपने आप में चिंताजनक है। ये सब साबित करता है कि आर्थिक सुधार आज भी आम आदमी के हित की कतई परवाह नहीं करते।

विनिवेश नीति - यूपीए सरकार का एक साल पूरा होते होते उसकी विनिवेश नीति जो न्यू.सा.का. के खिलाफ है सामने आयी। यूपीए सरकार ने समन्वय समिति से बिना सलाह किये मुनाफा कमा रही नवरत्न सार्वजनिक इकाई बी.एच.ई.एल में 10 प्रतिशत के

विनिवेश का फैसला लिया जबकि न्यू.सा.का. में साफ कहा गया है कि नवरत्न सार्वजनिक इकाईयों में विनिवेश नहीं किया जायेगा यानि उनका निजीकरण नहीं किया जायेगा। वामपंथियों के विरोध के बाद ही ये फैसला टला। यूपीए सरकार की न्य.सा.का. के खिलाफ इस विनिवेश नीति का वामपंथियों ने जब विरोध किया तो प्रेस और मीडिया ने उनकी काफी आलोचना की। वामपंथियों खासकर सी.पी. आई (एम) पर ये इल्ज़ाम लगाया कि पश्चिम बंगाल में वो, वो सब कर रही है जिसका केंद्र में वो विरोध कर रही है। प्रेस में कहा जाता रहा है कि आजकल वामपंथी सरकार ग्रेट ईस्टर्न होटल के विनिवेश की योजना बना रही है जब कि केंद्र में बी.एच.ई.एल. में विनिवेश का विरोध कर रही है। मगर सच कुछ और है। मुख्य मंत्री बुद्ध देव भट्टाचार्या का कहना है कि ''ग्रेट ईस्टर्न होटल एक बीमार सरकारी ईकाई है जबकि बी.एच.ई.एल. मुनाफा कमा रही सरकारी ईकाई (पी.एस.यू) है। पश्चिम बंगाल ऐसी सभी बीमार सरकारी इकाईयों का, निजी निवेश के जरिये, पुर्ननिर्माण और पुर्नगठन करेगा। इनको मुनाफा कमा रही केंद्रिय सरकारी इकाईयों के समकक्ष रखना और उनसे तुलना करना गलत है। केंद्रिय सरकार मुनाफा कमा रही सरकारी ईकाईयों में विनिवेश करके निजीकरण की दिशा में जा रही है जिसका हम विरोध करते हैं।'' मुख्य मंत्री ने आगे कहा ''राज्य सरकार ने नुकसान में चल रही करीब 14 सरकारी ईकाईयों का पुर्नगठन किया है जिसकी वजह से 2600 कामगार प्रभावित हुए है। राज्य सरकार इतने पर ही नही रूकी है। राज्य सरकार ने इस संदर्भ में अपने दूसरे चरण की योजना केंद्र सरकार को भेज दी है। इसके तहत सरकार ने 14 बीमार सरकारी उत्पादक (मैनीफेक्चरिंग) ईकाईयों और 15 राज्य स्तरीय बीमार ईकाईयों के नाम केंद्र सरकार को भेजे हैं। इन ईकाईयों के पुर्नगठन पर 1700 करोड़ रूपये की लागत आयेगी। शुरू में इस पहले चरण की 2006 तक पूरी करने की योजना थी पर हमने इससे पहले इसे पूरा कर दिया क्योंकि अगर हम ऐसा न करते तो केंद्र सरकार हमें डिपार्टमेन्ट फॉर इंटरनेशनल डेव्लपमेंट सेक्रेटरी से अनुदान न लेने देती बल्कि उधार लेने के लिये मजबूर करती जो हम नहीं चाहते थे क्योंकि सरकार पर पहले ही उधार का बोझ काफी है। वित्त मंत्रालय ने हमें अनुदान लेने की इज़ाजत इस शर्त पर दी कि हम इस पुर्नगठन की प्रक्रिया, के पहले चरण को मार्च 31, 2005 तक पूरा करें, जो हमने की।''

अगर पश्चिम बंगाल में राज्य स्तरीय सरकारी ईकाईयों पर नज़र डालें तो ज़्यादातर इकाईयां जैसे वेबेल अंडरटेकिंगस, स्टेट इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड और पाँच स्टेट ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशनस स्थापना के दिन से ही सरकारी नियंत्रण में थीं। इसलिये ये कहना कि सरकार ने उन्हें जब अपने नियंत्रण में लिया जब वे बीमार हो गयीं, गलत है। आज भी इन ईकाईयों के बोर्ड पर सरकार द्वारा मनोनित सदस्य हैं। ये तथ्य साबित करते हैं कि वाम विरोधी मीडिया और प्रेस आम आदमी को सच्चाई नहीं बता रहा है। वामपंथी शुरू से कह रहे हैं कि मुनाफा कमा रही सरकारी ईकाईयों में विनिवेश का मतलब है निजीकरण की दिशा में एक और कदम। साथ ही यह भी कह रहे हैं कि अगर ऐसी ईकाईयों को निवेश की ज़रूरत है तो ये अपनी स्वायत्तता के अंर्तगत बाज़ार से पैसा उगाह सकती हैं। बी.एच.ई.एल के विनिवेश के मामले में अब वामपंथ के साथ एन.सी.पी और डी. एम. के, भी आ गयी है और ये दोनों भी विनिवेश का विरोध कर रहीं हैं। इस सबका यह नतीजा निकला कि बी.एच.ई.एल. विनिवेश का फैसला टल गया है पर अभी तक रद्द नहीं हुआ है। अब सरकार विरल मुनाफा कमा रही सार्वजनिक ईकाईयों में विनिवेश नहीं करेगी।

सामाजिक नीतियां - यूपीए सरकार ने अभी तक महिला आरक्षण विधेयक संसद के सामने नही रखा है। रोज़गार के लिये अन्न की योजना पूरी तरह नाकामयाब रही है। शिक्षा का धर्मनिरपेक्षीकरण बीच में ही रोक दिया गया है। आज भी 'एकल विद्यालयों' और 'शिशु मंदिरों' को केंद्रिय और काँग्रेस शासित राज्य सरकारों से अनुदान मिल रहा है और उसी अनुदान के जरिये आर. एस.एस सांप्रदायिकता फैला रहा है। संघ परिवार और भाजपा से जुड़े राज्यपाल, दूसरे संस्थानों के अध्यक्ष और डायरेक्टर अभी तक कायम हैं और उनकी नियुक्तियां रद्द नहीं हुई हैं। निजीकरण जोरों पर हैं। पीने के पानी का निजीकरण यूपीए सरकार रोक नहीं रही है हालांकि सारी दुनिया में जहां-जहां पानी का निजीकरण हुआ है नतीजे खराब आये हैं। महाराष्ट्र में कांग्रेस और एन.सी.पी. सरकार पानी का निजीकरण करने पर उतारू है। दिल्ली की कांग्रेस सरकार विश्व बैंक के आदेश पर पानी का निजीकरण कर रही है। दिल्ली में बिजली के निजीकरण उपभोक्ता के हक साबित नहीं हुआ है।

शिक्षा - शिक्षा के क्षेत्र में अभी तक शिक्षा कर (एडूकेशन सेस) से जमा हुई राशि का प्राथमिक शिक्षा कोष नहीं खोला गया है। शिक्षा में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6 प्रतिशत निवेश नहीं किया गया है। राष्ट्रीय न्यू.सा.का. में शिक्षा में निवेश सकल घरेलू उत्पाद का 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 6 प्रतिशत करने का वादा था।

विदेश नीति - यूपीए सरकार अपनी विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता छोड़ती नजर आ रही है। गुजरात के मुख्यमंत्री, आर. एस.एस के स्वयंसेवक, गुजरात जनसंहार के जिम्मेदार और कट्टर हिंदुत्ववादी नरेंद्र मोदी को अमेरिका द्वारा टूरिस्ट वीज़ा न दिये जाने के प्रकरण में भारत के प्रधानमंत्री द्वारा अमरीका से दो बार विनती करना विदेश नीति का सांप्रदायिककरण ही नज़र आता है। सच कहा जाये तो मोदी के प्रकरण में अमरीका ने भारत को शर्मसार नहीं किया बल्कि यूपीए सरकार ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता को शर्मसार किया है।

अमरीका में प्रधानमंत्री द्वारा किया गया रक्षा करारनामा गुटनिरपेक्षता को नज़रअंदाज करता है। भारत-अमरीकी रक्षा संबंध का ये नया ढांचा विषमताओं से भरा हुआ है और इससे भारत को रणनीतिक और अंतराष्ट्रीय मामलों में स्वतंत्र कार्रवाई करने में अड़चनें आयेंगीं। करारनामें में ये बातें शामिल हैं: 'आतंकवाद और हिंसापूर्ण धार्मिक चरमपंथ को परास्त करना', 'महाविनाश के हथियारों और उनसे संबद्ध सामग्री के प्रसार को रोकना' और 'थल, वायु और समुद्री मार्गों से वाणिज्य के मुक्त प्रवाह की रक्षा करना।' अब तक का इतिहास बताता है अमरीकी सरकार खुद आतंकवाद फैलाती है जैसे कि इराक में युद्ध। आतंकवाद की लड़ाई में अमरीका का

नज़रिया 'हम' और 'वे' का है। भारत ने कभी भी सैनिक साधनों के जरिये 'मुक्त वाणिज्य' को बढ़ावा नहीं दिया और न ही भू-भागीय समुद्री साधन के ज़रिये। वायु क्षेत्र में प्रति प्रभुसत्तात्मक राष्ट्रीय अधिकारों की भारी कीमत पर व्यवहार को बढ़ावा दिया है। 'बहुराष्ट्रीय कार्रवाईयों' के खंड में संयुक्त राष्ट्र संघ से इजाज़त का ज़िक्र तक नहीं है। इस करारनामे के लिये अमरीका ने भारत को तीन लालच दिये हैंः स.रा.स में सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट के लिये भारत के प्रयास का समर्थन, हथियारों की बिक्री और उनके सह-उत्पादन का वादा और प्रेक्षपास्त्र रक्षा से संबंधित सहयोग। हम जानते हैं कि परिषद के नये सदस्यों को वीटो का अधिकार नहीं होगा। भारत 'प्रेक्षपास्त्र रक्षा' का विरोधी रहा है क्योंकि इससे परमाणु प्रतिरक्षा कमजोर पड़ जायेगी और विश्व और भी ज्यादा असुरक्षित हो जायेगा। इससे अंतरिक्ष का सैन्यीकरण भी हो जाएगा। इस तरह रक्षा संबंधों का ये नया ढांचा भारत को अमरीका का एक छोटा भागीदार या ग्राहक बना कर छोड़ देगा इससे भारत की स्वायत्ता और स्वतंत्रता कम होगी। न्यू.सा. का. में कहा गया है 'अमरीका के साथ निकट संपर्क और संबंध कायम करने की कोशिश के बावजूद यूपीए सरकार तमाम क्षेत्रीय और विश्व मुद्दों पर भारत की विदेश नीति स्वतंत्र रूख बनाए रखेगी।' रक्षा संबंध का नया ढांचा न्यू.सा.का. के खिलाफ है। क्योंकि ये अभी समझौते का प्रारूप है और देश की विदेश नीति के बिल्कुल उलट है इसलिये इसको रद्द करना चाहिये।

कामगार विरोधी नीति - यूपीए सरकार शुरू से ही कामगार भविष्य निधि पर ब्याज की दर कम करना चाह रही थी पर वामपंथियों के दबाव के अंदर अब 9.5 प्रतिशत ब्याज देने को तैयार हो गयी है।

यूपीए सरकार के एक साल के काम का जायजा लेते हुए प्रधानमंत्री ने खुद कहा है कि न्यू.सा.का. में किये गये वायदों में से सिर्फ चार वादे ही पूरे हो पाये हैं, अल्पसंख्यक कल्याण आयोग का गठन, उत्तर-पूर्व कॉऊंसिल का गठन, फसल और मवेशी बीमा योजना, ग्रामीण बिजलीकरण योजनाओं की शुरुआत और पोटा को रद्द करना।

सेंट्रल इंडिया न्यूज़ सर्विस (सी.आई.एन.एस) के एक सर्वेक्षण के मुताबिक भी यूपीए सरकार एक साल में आम आदमी के लिये कुछ खास नहीं कर पायी। इसके अनुसार आम आदमी अभी यू.पी.ए. सरकार को वक्त देने के लिये तैयार है। 79 महानगरों, नगरों, कस्बों और गाँवों में 25,991 लोगों के साथ बातचीत के बाद सर्वेक्षण ने ये पाया कि 78 प्रतिशत लोग एक साल के कामकाज से संतुष्ट थे, 88 प्रतिशत को प्रधानमंत्री की भूमिका ठीक लगी, 58 प्रतिशत लोग सहयोगी पार्टीयों के मंत्रियों और 72 प्रतिशत कांग्रेस के मंत्रियों के काम से संतुष्ट थे। 71 प्रतिशत लोगों को मानना है वामपंथियों और यूपीए सरकार में मतभेदों के बाद भी वामपंथियों का रवैया ठीक है। 82 प्रतिशत लोग वामपंथ की इस बात से इत्तिफाक रखते हैं कि देश की आर्थिक नीतियाँ गरीब और आम आदमी को केंद्र में रखकर बनायी जायें मतलब आर्थिक सुधार मानवीय चेहरा लिये हों। 41 प्रतिशत ने कहा बेरोज़गारी दूर करने पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया जाना चाहिए। 22 प्रतिशत मानते हैं कि देश के धर्मनिरपेक्ष माहौल को बेहतर बनाना यूपीए सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है जबकि 41 प्रतिशत मानते हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच संबंधों को बेहतर बनाना यूपीए सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है। मतलब ये सर्वेक्षण साफ बताता है कि आर्थिक सुधार इस तरह के हों कि आम और गरीब आदमी केंद्र में रहें और विकास ऐसा हो कि रोज़गार बढ़ाये।

कांग्रेस पार्टी और सांप्रदायिकता : कांग्रेस के मनोनीत प्रधानमंत्री ने 20 मई 2004 को अपने और मीडिया के बीच पहले संवाद में कहा था कि इन चुनावों में जनादेश मज़बूत और धर्मनिरपेक्ष सरकार बनाने, गरीबी, निरक्षरता और पिछड़ेपन से लड़ने, के पक्ष में है। जहां तक धर्मनिरपेक्षता को मजबूत करने और सांप्रदायिकता से लड़ने का सवाल है वहां कांग्रेस पिछले एक साल में कई बार नरम-हिंदुत्व का पक्ष लेती नजर आ रही है। महाराष्ट्र में कांग्रेस सावरकर के मुद्दे पर भाजपा-शिवसेना के साथ खड़ी नज़र आयी। संजय निरूपम और राणे जैसे तीस साल से कट्टरपंथी और हिंदुत्ववादी शिवसैनिकों को कांग्रेस में लेना, लोकसभा सेक्रेटेरियट से गोलवालकर और सावरकर पर पुस्तिकाएं जारी करना, म.प्र. के पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह द्वारा बाबूलाल गौर के, आफिस शुरू होने से पहले सरकारी कर्मचारियों के लिये, वंदे मातरम का हर रोज गायन के असंवैधानिक फैसले का समर्थन, और कांग्रेस के ही प्रधानमंत्री द्वारा आर.एस.एस के स्वयंसेवक सुंदर सिंह भंडारी के देहांत पर अपनी श्रद्धाजंली देते हुए उन्हें एक देशभक्त और प्रेरणा के स्त्रोत बताना, ये सब सांप्रदायिकता का समर्थन हैं। बताना ज़रूरी है आर.एस.एस भारत के राष्ट्रीय ध्वज को नहीं मानता, अपने भगवा ध्वज के आगे ही झुकता है, भारत के संविधान में विश्वास नहीं रखता, आलोकतांत्रिक और सांप्रदायिक है ये सब जानते हुए भी कांग्रेस पार्टी के प्रधानमंत्री ने सुंदर सिंह भंडारी को देशभक्त और प्रेरणा स्त्रोत बताया! भाजपा-राजग द्वारा नियुक्त स्वयंसेवक उपराष्ट्रपति से भंडारी को श्रद्धाजंली स्वाभाविक है पर कांग्रेस के प्रधानमंत्री से ये कतई अपेक्षित नहीं है।

यू.पी.ए. सरकार और पैसा (फंडस) : जब भी किसी आम आदमी और गरीब किसान से जुड़ी योजना को लागू करने की बात आती है तो यू.पी.ए. सरकार पैसे (फंडस) नहीं हैं का तर्क देकर योजनाओं को लागू न कर पाने में असर्मथता दिखाती है। ऊपर ये बताया गया है कि भारतीय सार्वजनिक बैंकों ने 45,000 करोड़ रूपयों को क्या कहकर बट्टे खाते में डाल दिया है और अदत्त (अनरिक्वर्ड) करों की राशि आज 90,000 करोड़ रूपयों तक पहुँच गयी है और दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। अगर ये 1,35,000 करोड़ यूपीए सरकार वसूल कर भारत निमार्ण में लगाये तो न्यू.सा. का, में आम आदमी गरीब, किसान और मध्यवर्ग को किये गये कई वादे पूरे कर सकती है। इसके अलावा 21,000 करोड़ रुपये हर साल देश में भ्रष्टाचार में जाते हैं, भ्रष्टाचार पर अगर सरकार रोक लगा दे तो ये पैसा भी विकास के काम आ सकता है। अगर इन तीनों को जोड़ा जाये तो कुल राशि 1,56,000 करोड़ हो जाती है जो कई योजनाओं के लिये काफी है।

यूपीए सरकार और वामपंथियों की भूमिका : यूपीए सरकार का वामदलों (61 सांसदों) द्वारा समर्थन के मूल उद्देश्य हैः देश में सांप्रदायिक, हिंदुत्ववादी, फासीवादी और कट्टरपंथी ताकतों पर अंकुश लगाना, आर्थिक सुधार मानवीय चेहरा लिये हों, रोजगारपूर्ण विकास हो, आम आदमी, कामगारों और किसानों के हितों की रक्षा हो, विदेश नीति गुटनिरपेक्ष हो, महिला सशक्तिकरण हो और अल्पसंख्यकों और दलितों को सुरक्षा मिले। दूसरे शब्दों में यूपीए सरकार के न्यू.सा. का को पूरी तरह बाहर से समर्थन देना और न्यू. सा.का. को पूरी तरह लागू कराने की कोशिश करना। कुछ मामलों में वामपंथ यूपीए सरकार से न्यू.सा.का. को लागू कराने में सफल भी हुआ है जैसे कामगार भविष्य निधि में ब्याज की दर 9.5 प्रतिशत ही रही, पेट्रोल और डीज़ल के दामों में उतनी वृद्धि नहीं होने दी जितनी सरकार चाहती थी, ग्रामीण रोज़गार बिल पास करवाना, बी.एच.ई.एल. के निजीकरण फिलहाल रोक पाने के साथ-साथ अन्य नवरत्नों का निजीकरण रोक पाना, भारत-अमरीका रक्षा संबंधित करार के प्रारूप को रद्द करवाने की कोशिश, इतिहास का पुर्नलेखन रूकवाना और शिक्षा का धर्मनिरपेक्षीकरण करवाना। समाज में कट्टरवादी, हिंदुवादी फासीवादी ताकतों पर भी कुछ हद तक वामपंथ अंकुश लगा पाया है। इस तरह से ये साबित होता है कि इस डेढ़ साल के दौरान वामपंथ ने यूपीए के समर्थक के साथ-साथ एक ज़िम्मेदार और **रचनात्मक विपक्ष** की भूमिका भी निबाही है। वामपंथ ने यूपीए सरकार के फैसलों का सिर्फ विरोध के लिये विरोध नहीं किया बल्कि विकल्प भी सुझाये वो चाहे पेट्रोल और डीज़ल के दामों में बढ़ोतरी का मामला हो, या कामगार भविष्य निधि के ब्याज की दर बढ़ाने का हो या बी.एच.ई.ल में विनिवेश का हो। **एक तरफ भाजपा-राजग ने अवरोधक विपक्ष की भूमिका अपनायी है तो दूसरी तरफ वामपंथ ने आम आदमी के हित की रक्षा की भूमिका निभायी है और सांप्रदायिक ताकतों को सत्ता में वापिस आने से रोके रखा है। ये अपने आप में भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक रचनात्मक, सकारात्मक और निश्चयात्मक प्रक्रिया मानी जायेगी और वो भी इस परिप्रेक्ष्य में जिस समय बहुतांश प्रेस, मीडिया, न्यायपालिका, और नौकरशाही वामपंथ विरोधी हैं।**

गैर सरकारी संगठनों और वामपंथ के समर्थकों की ये ज़िम्मेदारी है कि वे सब मिलकर लोकतंत्र के विकास के इस नये चरण की प्रक्रिया में अपने-अपने स्तर पर वामपंथ का समर्थन करें और एक देशव्यापी जन जागरण आंदोलन शुरू करें।

स्वर्ग में नर्क

हरिशंकर पारसाई

सेठ मेहूमल मिलवानी मिलावट के उस्ताद थे। वे घी में चर्बी, धनिया में लीद और बेसन में पिसा पत्थर इस तरह मिला देते थे कि किसी को मिलावट का पता ही नहीं लगता था। अगर जहर शहद से सस्ता मिलता तो वे शहद में जहर मिलाने में ज़रा भी नहीं हिचकते।

पर सेठ मेहूमल भगवद्-भक्त भी थे। वे खूब भजन-पूजन करते थे। लिहाज़ा जब वे मरे तो एक देवदूत आया और उन्हें उस लोक ले गया।

चित्रगुप्त ने रिकार्ड भगवान के सामने पेश कर दिया।

भगवान ने कहा सेठ मेहूमल, तुमने लगभग तीन लाख घण्टे मेरी पूजा की है, ऐसा रिकार्ड बताता है।

मेहूमल ने कहा हाँ भगवन्, मैं आपका अटल भक्त हूँ।

विधाता ने कहा इसीलिए हम तुम्हें स्वर्ग में स्थान देते हैं जाओ, अनन्त काल तक सुख भोगो।

मेहूमल को स्वर्ग में एक सुन्दर मकान में रखा गया। बढ़िया भोजन परोसा गया। उसकी सुगन्ध से उनकी भूख भड़क उठी। उन्होंने एक कौर लेकर मुँह में डाला तो थू-थू करके उगल दिया। भोजन में नीम की पत्ती मिला दी गयी थी।

मेहूमल ने पानी पिया तो मुँह में कीड़े काटने लगे।

वे भूखे-प्यासे ही सो गये।

रात को जब वे मुलायम गद्दे पर सो रहे थे, तब दीवारों से लम्बी-लम्बी सलाखें निकलीं और उनके शरीर में चुभने लगीं।

वे रात-भर सो नहीं सके।

सुबह उन्होंने एक अधिकारी से कहा मुझे विधाता के पास ले चलो। यह तुम्हारा कैसा स्वर्ग है ?

अधिकारी ने जवाब दिया विधाता ने स्वर्ग में नरक की मिलावट करने का हुक्म दे दिया है।

काशीपुर में सरकारी दमन

देबरंजन सारंगी, रबिशंकर प्रधान, सरोज मोहंती

पिछले 12 सालों के संघर्ष में उड़ीसा के काशीपुर आंदोलन ने जो कई सवाल खड़े किए हैं उनमें से एक 'विकास' से संबंधित है। इस आंदोलन ने प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण, जनजातीय समाज और संस्कृति पर राज्य एवं बाजार के हमले, और हाल ही में, लोगों के प्रति राज्य के अन्यायपूर्ण व्यवहार को देखने की एक नई नजर दी है। 16 दिसंबर 2000 को मैकांच में पुलिस ने तीन निहत्थे लोगों को गोली मारकर मौत के घाट उतार दिया और कई को बुरी तरह घायल कर दिया। इन हमलों के बावजूद लोग अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं। राज्य ने एक बार फिर तमाम लोकतांत्रिक कायदे-कानूनों को धता बताते हुए आंदोलनकारियों पर निर्मम दमन का सिलसिला शुरू कर दिया है। यह सारी कवायद बॉक्साइट खनन और प्रसंस्करण के क्षेत्र में सक्रिय दो औद्योगिक घरानों को फायदा पहुंचाने के लिए की जा रही है। इनमें से एक भारत की हिंडाल्को कंपनी है और दूसरी कनाडा की अल्कान। ये दोनों कंपनियां उत्कल एल्यूमिना इंटरनेशनल (यूएआईएल) के नाम से एक संयुक्त उद्यम के रूप में काम कर रही हैं और उड़ीसा के दक्षिणी भाग में एक बॉक्साइट खान और एल्यूमिना संयंत्र लगाना चाहती हैं।

पृष्ठभूमि

16 दिसंबर 2000 को मैकांच में हुई पुलिस गोलीबारी के बाद उड़ीसा सरकार ने न्यायमूर्ति पी. के. मिश्रा की अध्यक्षता में एक जांच आयोग का गठन किया था। जनवरी 2004 में मिश्रा आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। जांच रिपोर्ट में पुलिस और जिला प्रशासन की जमकर आलोचना की गई थी। आयोग ने पुलिस फायरिंग के लिए रायगड़ा के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक जसवंत जेठवा (फिलहाल मयूरभंज में तैनात), पुसिल उपाधीक्षक के. एन. पटनायक, काशीपुर पुसिल थाने के प्रभारी प्रभाशंकर नायक, पुलिस अधिकारी सुभाष स्वेन, और काशीपुर के बीडीओ गोलकनाथ बडजेना को प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया था। दूसरी तरफ आयोग ने अपनी जांच के दायरे से बाहर जाते हुए इस बात पर भी ज़ोर दिया था कि काशीपुर जैसे पिछड़े खेतिहर इलाके में बॉक्साइट खनन और एल्यूमिना संयंत्र की जरूरत है (और ज्यादा जानकारी के लिए पीयूसीएल की भुबनेश्वर इकाई द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट को देखा जा सकता है)। उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक ने दोषी पुलिसकर्मियों और प्रशासकीय अधिकारियों पर कार्रवाई करने की बजाय धमकी दी कि "इस उद्योग का विरोध करने वाली ताकतों के साथ सख्ती से निपटा जाएगा।"

यूएआईएल में हिंडाल्को का हिस्सा 55 प्रतिशत और अल्कान का 45 प्रतिशत है। इससे पहले टाटा, हाइड्रो (नॉर्वे) और अल्कोवा (अमेरिका) भी इस संयुक्त उद्यम का हिस्सा थे मगर बाद में स्थानीय आंदोलन के दबाव में उन्होंने इस उद्यम से हाथ खींच लिया। यूएआईएल परियोजना की लागत 4500 करोड़ रुपए आने वाली है। यह पूरी तरह निर्यातोन्मुखी परियोजना होगी। इस परियोजना के लिए मैकांच के पास स्थित बाफलीमली इलाके में बॉक्साइट की खुदाई की जाएगी। इस इलाके में बॉक्साइट के 19.5 करोड़ टन भंडार बताए जाते हैं। परियोजना के तहत कूचीपदर के पास एक रिफाइनरी भी लगाई जाएगी। यूएआईएल की परियोजना रिपोर्ट के मुताबिक एल्यूमिना संयंत्र की क्षमता सालाना 10 लाख टन एल्यूमिना उत्पादन की होगी जिसे कुछ सालों में 30 लाख टन सालाना तक बढ़ा दिया जाएगा। यदि किसी संयंत्र की उत्पादन क्षमता 30 लाख टन एल्यूमिना प्रतिवर्ष है तो उसे हर साल 90 लाख टन बॉक्साइट की जरूरत पड़ेगी। इसका मतलब यह है कि बाफलीमली इलाके में मौजूद बॉक्साइट के सारे भंडार 22-23 साल के भीतर खत्म हो जाएंगे।

उड़ीसा में यूएआईएल के अलावा कम से कम पांच बॉक्साइट खनन और एल्यूमिना परियोजनाओं पर काम चल रहा है। ये परियोजनाएं तीन जिलों के पांच ब्लॉकों - काशीपुर (जिला रायगड़ा), लक्ष्मीपुर और दसमंतपुर (जिला कोरापुट), लांजीगड़ा और थुआमूलरम्पुर (कालाहांडी) में केंद्रित हैं। स्टरलाइट ने काशीपुर ब्लॉक के ससुबोहूमली में बॉक्साइट की खुदाई का प्रस्ताव रखा है। लार्सन एंड टूब्रो काशीपुर ब्लॉक में सीजीमली और कुतरूमली से जबकि बिरला उद्योग समूह लक्ष्मीपुर ब्लॉक के कोडिंगामली इलाके से बॉक्साइट की खुदाई करना चाहता है। इनके अलावा वेदांता समूह भी है जो कालाहांडी जिले में स्थित न्यामगिरी और खंडुअलमली के इलाके में बॉक्साइट की खुदाई करेगा। दक्षिणी उड़ीसा के इन तीनों जिलों में बॉक्साइट के विशाल भंडार मौजूद हैं। यहां 100 करोड़ टन से ज्यादा बॉक्साइट होने का अनुमान व्यक्त किया गया है। इस पूरे घटनाक्रम के पीछे सबसे दुखद बात यह है कि यह सारी बॉक्साइट अगले 20-25 साल के भीतर खत्म हो जाएगी। बॉक्साइट के इस दोहन से यहां के लोगों पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। बॉक्साइट ही वह पदार्थ है जिसकी वजह से आसपास की पहाड़ियों से निकलने वाली इंदरावती, बांसधारा और नागबली जैसी नदियां बारहों महीने भरी रहती हैं। इन नदियों की ही बदौलत यहां के लोगों को पूरे साल पानी की कमी नहीं होती।

यूएआईएल परियोजना में 1400 लोगों को रोजगार मिलेगा।

इनमें 400 पद गैर-तकनीकी किस्म के भी हैं। ये पद स्थानीय लोगों को भी दिए जा सकते हैं। मगर यह अकेली परियोजना आसपास के 82 गांवों के 20,000 लोगों की जिंदगी तबाह कर देगी (यूएआईएल का कहना है कि इस परियोजना से केवल 24 गांवों के लोग प्रभावित होंगे)। यूएआईएल की मुख्य हिस्सेदार हिंडाल्को कंपनी आदित्य बिरला उद्योग समूह का हिस्सा है। हिंडाल्को के निदेशक ने मुंबई में कहा था, "एल्युमीनियम इस कंपनी का मुख्य कारोबार रहा है इसलिए उत्कल परियोजना के मामले में किसी तरह का समझौता नहीं किया जाएगा।" काशीपुर में यह एकमात्र परियोजना नहीं है। आदित्य बिरला समूह सम्भलपुर के पास भी एक एल्युमीनियम प्लांट लगाना चाहता है। इस संयंत्र के लिए कोडिंगामली में बॉक्साइट की खुदाई की जाएगी। यही उद्योग-समूह कोरापुट में काशीपुर के पास स्थित लक्ष्मीपुर ब्लॉक में भी एक एल्युमिना संयंत्र लगाना चाहता है। इसी प्रकार आदित्य एल्युमिना नामक कंपनी सम्भलपुर के पास एल्युमीनियम उत्पादन संयंत्र लगाना चाहती है। जब स्थानीय लोगों ने आदित्य एल्युमिना कंपनी के प्रस्ताव का विरोध किया तो उन्हें तरह-तरह से परेशान किया जाने लगा। यह घटना तब घटी जब राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड 18 जनवरी 2005 को भारी पुलिस घेरे में सम्भलपुर जिले में प्रस्तावित आदित्य बिरला उद्योग समूह की परियोजना के खिलाफ जनसुनवाई चला रहा था।

वेदांता ब्रिटेन की कंपनी है। वेदांता कंपनी ने अप्रैल 2004 से तमाम कानूनों को ताक पर रखकर कालाहांडी जिले में लांजीगड़ा (काशीपुर के पास) में जबरन अपना काम शुरू कर दिया है। जब 2002 में यहां इस परियोजना की शुरुआत हुई थी तो लांजीगड़ा के लोगों ने न्यामगिरी सुरक्षा समिति के बैनर तले आंदोलन छेड़ दिया था। वेदांता की इस प्रस्तावित परियोजना में लगभग 4000 करोड़ रुपए का निवेश किया जाएगा। इस परियोजना के लिए न्यामगिरी पहाड़ियों से बॉक्साइट निकाली जाएगी और लांजीगड़ा में 10 लाख टन क्षमता वाला एक एल्युमिना संयंत्र स्थापित किया जाएगा। यह संयंत्र न्यामगिरी पहाड़ियों में उपलब्ध बॉक्साइट के भंडारों (7.5 करोड़ टन) को महज 25 साल में खत्म कर देगा। जब स्थानीय लोगों ने परियोजना का विरोध किया तो राज्य सशस्त्र पुलिस ने दो बार उनके साथ बुरी तरह मारपीट की। अप्रैल 2004 में बहुत सारे कार्यकर्ताओं को झूठे मुकदमों में फंसा कर तकरीबन दो माह जेल में रखा गया। जिस समय आंदोलनकारी जेल में थे उसी समय वेदांता ने जिला प्रशासन और पुलिस की मदद से कानूनों को ताक पर रखते हुए अपना काम शुरू कर दिया। कंपनी ने वन संरक्षण अधिनियम 1980 के प्रावधानों का जमकर उल्लंघन किया। इस अधिनियम में उच्चतम अधिकारी से उचित अनुमति लिये बिना आरक्षित वन में प्रवेश को निषिद्ध घोषित किया गया है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित की गई केंद्रीय उच्चस्तरीय समिति (सीईसी) ने भी वेदांता की करतूतों के लिए उसको कड़ी फटकार लगाई थी।

इस बीच बी.जे.डी.-भाजपा के मुख्यमंत्री ने कई बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों के साथ 10 बॉक्साइट परियोजनाओं और 15 लौह परियोजनाओं पर अपनी मंजूरी दे दी है। इन कंपनियों में रियो टिंटो, बीएचपी बिलिटन, और दक्षिण कोरिया की पोस्को आदि बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां शामिल हैं। इन परियोजनाओं के जरिए उड़ीसा में 2,50,000 करोड़ रुपए का निवेश होगा और राज्य के 10 लाख से ज्यादा लोग विस्थापित होंगे (उड़ीसा सरकार के अनुसार भी इन परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वालों की संख्या कम से कम 2.5 लाख ज़रूर रहेगी)। मुख्यमंत्री नवीन पटनायक ने नवंबर 2004 में कहा था कि उड़ीसा के औद्योगिकरण और प्रगति की राह में किसी को भी रोड़े अटकाने की इजाज़त नहीं दी जाएगी। उनकी तमाम कार्रवाइयां उनके इस बयान की तस्दीक करती है। दिसंबर 2004 में काशीपुर में हुआ दमन उनके इस ऐलान के बाद ही हुआ था।

दमन का दूसरा दौर

1 दिसंबर 2004 को रायगड़ा के जिला कलेक्टर प्रमोद कुमार मेहरदा, पुलिस अधीक्षक संजय कुमार और टिकरी पुलिस थाने के प्रभारी किशोर चंद्र मुंड पुलिस की लगभग 10 पलटनें लेकर करोल (कूचीपदर के पास) पहुंचे और वहां उन्होंने एक पुलिस चौकी व बैरक तैनात कर दी। पुलिस चौकी और बैरक की स्थापना के खिलाफ तकरीबन 300-400 लोग सड़क पर आकर बैठ गए क्योंकि पुलिस की यह कार्रवाई बॉक्साइट खनन और एल्युमिना संयंत्र के खिलाफ उनके आंदोलन को कुचलने की कोशिशों का हिस्सा थी। हालांकि खुद कलेक्टर वहां मौजूद थे मगर उन्होंने लोगों से बात करने की ज़रूरत नहीं समझी। इसकी बजाय पुलिस अधिकारियों ने आकर ऊंची आवाज में ऐलान कर दिया कि **''.... औरतों यहां से हट जाओ, सड़क साफ कर दो वर्ना हम तुम्हारी इज्जत लूट लेंगे।"** प्रदर्शनकारियों में शामिल बड़ी-बूढ़ी औरतें फौरन सामने आ गईं और उन्होंने लड़कियों व कम उम्र महिलाओं को पीछे भेज दिया। इसके बाद 11 बूढ़ी औरतों ने अपने कपड़े उतार फेंके और पुलिस को चुनौती दी, **"आओ, लूटो हमारी इज्जत। फिर भी न तो हम अपनी जमीन छोड़ेंगे और न चुपचाप घर वापस जाएंगे।"** इसके बाद पुलिस के जवानों ने तीन बार हवाई गोलियां चलाईं और देखते-देखते वह प्रदर्शनकारियों पर लाठियां बरसाने लगे। इस लाठीचार्ज में दो महिलाओं सहित 6 लोग बुरी तरह घायल हो गए। पुलिस सभी घायलों को थाने में ले गई और बाद में उन्हें जेल भेज दिया गया।

2 दिसंबर 2004 को रायगड़ा में नक्सलवाद विरोधी कार्रवाइयों के लिए तैनात केंद्रीय आरक्षी बल (सीआरपीएफ) की बटालियनों को यहां तैनात कर दिया गया। सीआरपीएफ के जवान रायगड़ा से टिकरी तक (60 किलोमीटर) पैदल मार्च करते हुए आए। इन जवानों को रफकाना से टिकरी तक के पूरे रास्ते (30 किलोमीटर) पर तैनात कर दिया गया। पूरे इलाके में भारतीय आरक्षी बटालियन और उड़ीसा राज्य सशस्त्र बल के जवानों को भी तैनात कर दिया गया। कूचीपदर की तरफ आने वाले तमाम रास्तों पर सीआरपीएफ की टुकड़ियां तैनात कर दी गईं। सीआरपीएफ के जवान पूरे इलाके में दहशत का माहौल पैदा करने के लिए मुख्य सड़क तथा गांवों में फ्लैग मार्च निकालने लगे। लोगों को डराने-धमकाने के लिए उन्होंने कई बार गांवों में छापे भी मारे। 6 दिसंबर की रात को तकरीबन 100

सशस्त्र जवानों ने बघरीझोला गांव पर छापा मारा और गांव भर के मर्दों को खूब दौड़ाया। कुछ दिनों बाद सिरीगुड़ा, दिमुंडी आदि गांवों के साथ भी यही सुलूक हुआ।

पिछले दो माह से पुलिस की 8-10 पलटनें स्थायी रूप से टिकरी पुलिस स्टेशन (कूचीपदर से 11 किलोमीटर) में तैनात हैं। काशीपुर के ब्लॉक विकास अधिकार (बीडीओ) और तहसीलदार का असली काम वैसे तो ब्लॉक के विकास कार्यों पर नजर रखना और ब्लॉक के ज़मीन संबंधी मामलों का निपटारा करना ही है मगर अब ये अफसर भी फायरिंग का आदेश देने के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश से पुलिस थाने में ही तैनात कर दिए गए हैं। पुलिस की दो अतिरिक्त पलटनें करोल-कूचीपदर (यूएआईएल के प्रस्तावित एल्युमिना संयंत्र क्षेत्र के बेहद पास) में नवनिर्मित पुलिस चौकी और बैरक में तैनात हैं। एक पुलिस चौकी मैकांच (यूएआईएल की बॉक्साइट खनन पहाड़ी, बाफलीमली में दाखिल होने का बिंदु) में भी खोल दी गई है। वहां भी पुलिस की एक पलटन तैनात है। इन पुलिस चौकियों में तैनात जवान काशीपुर, लक्ष्मीपुर और दसमंतपुर ब्लॉक की साप्ताहिक हाटों में जाते हैं और लोगों के साथ मारपीट और ज़ोर-जबर्दस्ती करते हैं। ये जवान सड़क पर गुजरने वाले तमाम वाहनों की तलाशी लेते हैं और स्थानीय कार्यकर्ताओं को परेशान करते हैं। अब इन सशस्त्र बलों की भूमिका लोगों को परेशान करने, उन्हें डराने-धमकाने, लोगों को रातोंरात उठा लेने, साप्ताहिक बाज़ारों में तोड़-फोड़ करने, गांवों में फ्लैग-मार्च करने, औरतों के साथ बदसलूकी करने और लोगों के साथ मारपीट तक सीमित होकर रह गई है।

अब तक काशीपुर और लक्ष्मीपुर ब्लॉक के 18 कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया जा चुका है। इनमें से 15 कार्यकर्ताओं को दिसंबर में केवल चार दिन बाद हिरासत में ले लिया गया था। अब तक सिर्फ एक बूढ़ी महिला और एक आदमी को जमानत मिली है। पुलिस चौकियों और बैरकों की स्थापना के बाद कंपनी के अधिकारी प्रशासन की मदद से उस सरकारी सड़क को चौड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं जो संयंत्र और खनन क्षेत्र को एक दूसरे से जोड़ती है। 4 जनवरी 2005 को पुलिस और सरकारी अधिकारी 40 गाड़ियों में सवार होकर रात के समय इस इलाके में पहुंचे और अगले दिन यूएआईएल ने सड़क को चौड़ा करने का अपना काम शुरू कर दिया। हालांकि पूरा नज़ारा रोंगटे खड़े कर देने वाला था मगर स्थानीय लोग इस काम को रोकने के लिए 5 दिन तक (6-10 जनवरी) लगातार सड़क पर बैठे रहे। वक्ती तौर पर ही सही, उनका संघर्ष रंग लाया है। फिलहाल सड़क को चौड़ा करने का काम रुक गया है। जो लोग खनन गतिविधियों के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं उन्हें 'समाजविरोधी' 'राष्ट्र विरोधी' 'विकास विरोधी' और 'चरमपंथी' कहा जा रहा है।

काशीपुर और लांजीगड़ा में खनन विरोधी संघर्ष स्थानीय लोगों के जीवन और आजीविका की सुरक्षा की एक कोशिश है। मगर इससे भी अहम बात यह है कि ये संघर्ष बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा की जा रही प्राकृतिक संसाधनों की लूट-खसोट और तबाही के भी खिलाफ हैं। यह एक ऐसा संघर्ष है जो असंख्य लोगों की दरिद्रता के बदले कुछ लोगों की संपन्नता पर सवाल खड़ा कर रहा है, मुट्ठी भर लोगों के मुनाफे के लिए बहुत सारे लोगों के संसाधनों की लूट-खसोट का विरोध कर रहा है। उड़ीसा के लोग अपने लिए और आने वाली पुश्तों के लिए गैर-पुनर्नवीकृत प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा का संघर्ष लड़ रहे हैं। इस बिंदु पर सभी समान सोच वाले राजनीतिक समूहों, संगठनों और व्यक्तियों से आह्वान किया जाता है कि वह इस सरकारी दमन के खिलाफ आवाज उठाएं और राज्य के प्राकृतिक संसाधनों के स्वार्थपूर्ण दोहन पर केंद्रित ऐसी तमाम परियोजनाओं को रद्द करने की लड़ाई में अपना योगदान दें।

इकॉनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली से साभार।

जौनपुर जिले में सांप्रदायिकता भड़काने की कोशिश

उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के जमदहाँ गाँव में ज़मीन को लेकर सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाने की कोशिश की जा रही है। खेतासराय दीदारगंज मार्ग पर कब्रिस्तान की 56 बीघा ज़मीन है। इस ज़मीन के एक हिस्से पर लगभग तीस साल से गाँव के एक पक्ष के लोग अपनी मिल्कीयत का दावा करते आ रहे है। उनका कहना है कि मुसलमानों ने इस सार्वजनिक ज़मीन को ज़बरदस्ती कब्रिस्तान के रूप में दर्ज करा लिया है। इस ज़मीन को लेकर जमदहाँ में भा. ज.पा. द्वारा सांप्रदायिक दंगा करवाया गया। हिंसा और आगजनी की घटना में आरोपित 23 आदमियों को गिरफ्तार कर लिया गया। इस दंगे में एक महिला की मौत हो गयी और कई बेगुनाहों को प्रताड़ित किया गया। फरवरी में भड़के इस सांप्रदायिक दंगे के बाद गाँव में कर्फ्यू जैसी स्थिति बन गयी थी। पुलिस कई घरों के दरवाज़े तोड़कर अंदर घुसी और कई आदमियों को गिरफ्तार किया। गाँव के लोगों के मुताबिक स.पा. के क्षेत्रीय विधायक सोनकर ने एक समुदाय के झंडों को उखाड़कर दंगों को और भी भड़काया। बसपा का कहना है 'मुख्यमंत्री के चहते मंत्री और विधायक दंगा करवा रहे हैं। स.पा. के निशाने पर अब मुस्लिम, दलित और कमज़ोर तबके के लोग आ गये हैं।' ऐतिहासिक तौर पर यह ज़िला हमेशा से हिंदु-मुस्लिम भाईचारे की मिसाल रहा है पर आजकल इस भाईचारे को खत्म करने की कोशिश की जा रही है। ये अपने आपमें अच्छे संकेत नहीं हैं।

महिला सशक्तिकरण
(एक निरंतर प्रक्रिया)

नीलम

महिला कमजोर है, महिला कुछ नहीं कर सकती, महिला की अक्ल घुटनों में होती है, महिला निर्णय नहीं ले सकती ये सारी की सारी बातें महिलाओं को कम से और कमतर बनाने की प्रक्रिया है। परन्तु एक तरफ जब हम ये कहते हैं कि किसी सफल पुरूष के पीछे किसी न किसी महिला का हाथ होता है तब हम अपने दिये हुए इन तोहफों को क्यों भूल जाते हैं ? यदि महिला स्वयं में बुद्धिहीन है तो वह कैसे एक पुरुष को एक सफल व्यक्ति बना सकती है ? इन सब बातों से ये ज़ाहिर होता है, की ये सब बातें महिला के प्रति विद्वेषपूर्ण व्यवहार का परिचायक है। अकसर हम देखते हैं कि यदि किसी की विद्वता इतनी आगे बढ़ रही है कि हम उसके आगे टिक नहीं सकते तो हम उस व्यक्ति के प्रति ऐसी व्याख्याओं और परिभाषाओं को गढ़ना शुरू कर देते हैं। जिनका दूर-दूर तक कहीं कोई अर्थ ही नहीं होता। कहते हैं कि यदि एक झूठ को 10 बार बोलो तो लोग उसी को सच मानने लगते हैं। जिस व्यक्ति या समूह के बारे में आप बोल रहे हैं वो भी उसे सच मान लेता है। महिलाओं के बारे में भी इस तरह की परिभाषाएं देकर उन्हें बार-बार यही दोहराया गया उसे सुनने व पढ़ने वालों ने भी उसे जीवन में स्वीकारना शुरू कर दिया। उन्होंने कभी भी इस पर तर्क व विश्लेषण करना उचित नहीं समझा। यदि ये सारी व्याख्याएं सच होतीं तो कभी भी लड़कियाँ लक्ष्मीबाई, विद्योत्तमा, इंदिरा गांधी, किरण बेदी, कल्पना चावला, सौदामिनी देशमुख नहीं बन पाती। ये बात सिर्फ पढ़ी लिखी महिलाओं और ऊँचे पद पर कार्यरत महिलाओं पर ही लागू नहीं होती की वे ही सिर्फ सक्षम हैं। शिक्षा से वंचित ग्रामीण महिलाएँ भी उतनी ही बुद्धिमान, और निर्णय लेने में सक्षम होती हैं। इस तर्क को हम एक लोककथा के माध्यम से साबित करना चाहते हैं।'

एक बार एक ब्राह्मण जिसको एक कुल्हाड़ी की ज़रूरत थी सोचने लगा, क्यों न गांव में जाकर किसी महिला को बेवकूफ बनाकर अपनी जरूरत पूरी की जाए। ब्राह्मण गांव में गया तथा एक महिला के घर जाकर उसे बताने लगा आजकल तुम्हारा शनि ठीक नहीं चल रहा है। इसके लिए तुम्हें लोहे की किसी छेदवाली वस्तु का दान करना होगा। छेद वाली वस्तु कुल्हाड़ी के अलावा और क्या हो सकती है। इसलिए अब तुम मुझे कुल्हाड़ी का दान दे दो जिससे तुम्हारी शनि दशा खत्म हो जायेगी। महिला ने थोड़ा सोचा और पंडित जी को जवाब दिया पंडित जी छेद वाली लोहे की वस्तु तो सुई भी होती है इसलिए मैं आपको सूई का दान देती हूँ। इस पर पंडित जी काफी दुखी हुए और ''अपना सा मुँह लेकर'' सुई ही लेने को तैयार हो गये।

महिलायें आदिकाल से ही पुरूषों के बराबर क्षमता रखने वाली हैं किसी भी सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में जहां भी उन्हें मौका मिला है उन्होंने अपनी क्षमता को साबित किया है। परंतु इतना सब कुछ होने के बाद भी 21 वीं सदी में जहां पर महिला पुरूष समानता को लेकर बातचीत की जाती है वहां पर आज भी धर्म और समाज द्वारा महिला को एक खिलौने की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। उस पर उत्पीड़न और उसके शोषण के मामलों को दर्ज ही नहीं किया जाता। यदि कहीं दर्ज भी कर लें तो उसे समझाया जाता है देखो यदि तुमने ज्यादा बात आगे बढ़ायी तो तुम्हारी ही बदनामी होगी। तुम्हारे पूरे परिवार को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा। इन सब बातों के बावजूद यदि कोई महिला आगे आती है तो ये पितृसतात्मक सामाजिक ढाँचे की न्यायप्रक्रिया सही न्याय नहीं कर पाती। कभी उसे जातिगत या धर्मगत मामला बनाकर उन लोगों के हाथ में न्याय का कार्यभार सौंप देती है जिन्होंने धर्म के अंर्तगत महिला के लिए नाममात्र का भी न्याय नहीं रख छोड़ा है।

इसके कई उदाहरण आये दिन की खबरों में मिलते रहते हैं। ताजा तरीन मिसाल इमराना का है। उसकी उम्र 32 साल है और उसके तीन बेटे और दो बेटियां है।

इस मामले में प्रशासन का कहना है की इमराना जो अपने ससुर की हवस का शिकार हुई है उसमें उस धर्म के धार्मिक नेता ही सही निर्णय ले सकते हैं। इमराना के पक्ष में उसके धार्मिक नेताओं का कहना है कि इमराना को अपने धर्म का पालन करते हुए अपने पति को अपना बेटा मानना चाहिए क्योंकि चाहे उसके ससुर ने बलपूर्वक ही उसके साथ शारीरिक संबंध बनाया परंतु संबंध बनते ही उसका और उसके पति का रिश्ता माँ बेटे का हो गया। क्या ये सही है महिलाओं से उनकी इच्छा न पूछकर अपनी इच्छा उन पर थोप देना ? ये कौन सी दुनिया का धर्म है, ये कहां का न्याय है, ये कैसी इज्जत है और कैसा सम्मानजनक प्यार है ? जब आज पुरुष पंचायत एक अपराधी को सजा देने के बजाय महिला से कह रही हो कि वह उस अपराधी जिसने उसके प्रति अपराध किया है उसको वे सुख-सुविधाएं प्राप्त करवाये जो एक पत्नी अपने पति को देती है। यानि उस पुरुष से शादी कर ले। क्या शानदार न्याय है पुरुष पंचायत का। इस न्याय को सुनने के बाद भी यदि महिलाये ना जागी तो उनके साथ और कैसा-कैसा न्याय होगा। इसके लिए वह स्वयं समझ सकती हैं।

ये महिला के प्रति बेज़बान जानवर की तरह बर्ताव से कम नहीं है। प्रेमचंद की एक कहानी 'दो बैलों की जोड़ी' इस संदर्भ में

काफी सटीक है। आज भी हमारे समाज में महिला के संदर्भ में निर्णय लेते समय महिला को एकदम निर्जीव समझकर उसके साथ व्यवहार किया जाता है उससे उम्मीद की जाती है कि वे रातों रात अपने अंतरंग व करीबी रिश्तों को बदलकर उन रिश्तों के मायने ही बदल डाले क्योंकि ये धर्म की किताबों में लिखा है। क्या पति पत्नी का रिश्ता सिर्फ शारीरिक संबंधों से जुड़ा होता है क्या उसमें प्रेम भावनाओं, सुरक्षा, और एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना नहीं होती ? प्रकृति ने जिसे सृजन के लिए भेजा था आपने उसे अपने धर्म की मोटी-मोटी जंजीरों से बांधकर उसकी सोच उसके व्यक्तित्व उसकी स्वतंत्रता यहां तक की उसके शरीर को तक बांध दिया और उसके व्यक्तिगत निर्णय भी खुद ही लेने लगे।

यदि महिला आगे आने के लिए अपनी प्रतिभा का परिचय देती है तो उसको रोकने के लिए कैसे-कैसे हम अपनी कुंठाओं को निकालते हैं। मिसाल के तौर पर टेनिस खिलाड़ी सानिया मिर्ज़ा की खेल पोशाक को लेकर इस्लामिक धर्म गुरुओं (मुल्लाओं) द्वारा आपत्ति जाहिर करने का मतलब ये नहीं निकलता की वास्तव में उन्हें धार्मिक दृष्टिकोण से आपत्ति है बल्कि इससे पितृसत्ता को असुरक्षा नज़र आती है। महिलायें यदि उनकी वास्तविकता समझ जायेंगी तो धर्मगुरू कैसे उन पर अपनी सत्ता चलाकर उन्हें बेवकूफ बना पायेंगे। मुल्लाओं का कहना है कि सानिया की पोशाक से धर्म को खतरा है, सवाल यह है कि कैसा खतरा है वे साफ-साफ क्यों नहीं बताते। बल्कि दूसरी तरह से देखा जाये तो सानिया के बेहतरीन प्रदर्शन से उसके देश, धर्म व जाति व उसके परिवार का मान-सम्मान बढा है। इन सभी का सर उसके हर अच्छे प्रदर्शन से और ऊंचा होता है। फिर धर्म के ठेकेदारों को क्यों अपने लिए ये खतरा नज़र आता है ?

हमारा समाज पूरा का पूरा महिला के जीवन जीने के ढंग में विरोधाभासों से भरा पड़ा है एक तरफ आप बताते हैं, महिला शक्ति स्वरूप है। सृष्टि का निर्माता ईश्वर भी उसके बिना शव है यानि सृष्टि के तृणभर निर्माण में भी अशक्त है। हिन्दू धर्म के अनुसार साल में दो बार बसन्त व शरद ऋतुओं पर देवी की पूजा उपासना का विधान है। उपासना करने वाले उपासकों का मानना है कि देवी की उपासना करने से उनके अन्दर नयी शक्ति का संचार होता है। सबसे शक्तिशाली जानवर शेर को उनका वाहन बनाया जाता है। इतने शक्तिशाली जानवर को साधने वाली को कैसे आप अबला कहते हैं ?

1. सबसे शक्तिशाली जानवर शेर की सवारी करने वाली अबला कैसे हो गयी ?

2. पुरुष जिसके बिना शव है, पुरुष के अन्दर शक्ति का संचार करने वाली कमजोर कैसे बन गयी ?

3. महिषासुर जैसे दानव जिससे सारे देवता (पुरुष) डर गये थे उसको मार गिराने वाली साधारण पुरुषों द्वारा कैसे मर्दित हो रही है ?

4. सृष्टि का पालन पोषण करने वाली का भर्तार कैसे पुरुष हो गया ?

5. अपनी तीसरी आंख खोलकर सृष्टि को पलभर में भस्म करने की क्षमता रखने वाली स्वयं कैसे दहेज की वेदी पर भस्म हो रही है ? इन सब सवालों का विश्लेषण करके हमें देखना है कि ये पितृसत्तात्मक प्रणाली कैसे हमारी मानसिकता को वश में करके हमें कमजोर व दूसरे दर्जे का नागरिक बना रही है।

महिलाओं को यदि वास्तविक रूप में स्वतंत्रता चाहिए तो इसके लिए उन्हें और कठिनताओं का सामना करने के लिये तैयार रहना होगा, क्योंकि जब तक वे अपनी बात खुलकर बेखौफ नहीं कहेंगी, अपने अधिकार नहीं मांगेंगी, अपने खिलाफ हुए अन्याय के लिए पितृसत्ता व धर्मगुरुओं से तर्क नहीं करेंगी और सोच समझकर अपने निर्णय स्वयं नहीं लेंगी, धार्मिक मान्यताओं का विश्लेषण करके उनकी तह तक नहीं जायेंगी और सबसे बड़ी बात अपने सीमित ज्ञान में वृद्धि नहीं करेंगी, तब तक महिला सशक्तिकरण सम्भव नहीं होगा। केवल मुट्ठीभर महिलाओं के सशक्त हो जाने से देश व समाज की परिस्थितियों में कुछ बदलाव नहीं आने वाला। सशक्तिकरण के लिए प्रत्येक महिला को अपने प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करनी होगी तथा आततायीयों, उत्पीड़कों और शोषकों के खिलाफ खड़ा होना होगा।

आज महिला सशक्तिकरण एक प्रक्रिया से गुजर रहा है। ये प्रक्रिया कई स्तरों पर चालू है : आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, कानूनी, मानसिक और मानवीय अधिकारों के स्तर पर। हम सब का फर्ज़ है कि हम सभी पुरुष और महिला दोनों ही अपने-अपने तौर पर इस प्रक्रिया में अपना योगदान दें।

एक दुआ

इब्ने इंशा

''या अल्लाह ! खाने को रोटी दे। पहनने को कपड़े दे। रहने को मकान दे। इज़्ज़त और आसूदगी की ज़िंदगी दे।''

''मियाँ ये भी कोई माँगने की चीज़ें हैं ? कुछ और माँगा करो।''

''बाबाजी ! आप क्या माँगते हैं ?''

''मैं ? ये चीज़ें नहीं माँगता। मैं तो कहता हूँ, अल्लाह मियाँ मुझे ईमान दे, नेक अमल की तौफ़ीक दे।''

''बाबाजी, आप ठीक दुआ माँगते हैं। इन्सान वही चीज़ तो माँगता है जो उसके पास नहीं होती।''

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और आतंकवाद

राम पुनियानी

आतंकवाद को एक भयावह घटना के साक्ष्य के रूप में देखा गया है। और खासकर आज के मौजूदा समय में। आतंकवाद क्या है, यह अपने आप में ही एक स्तर पर विवाद का विषय है और दूसरे स्तर पर आतंकवाद की परिभाषा व्यक्ति दर व्यक्ति, समूह दर समूह और देश दर देश बदलती रहती है।

कहा नहीं जा सकता कि आखिर अमेरिका स्थित आतंकवाद अनुसंधान केंद्र ने, जो कि इस विषय पर अमेरिकी थिंक टैंक (विचार-विश्लेषण समूह) है, इस मुद्दे को किस तरह से कसौटी पर कसा, लेकिन उसने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जो कि भाजपा, विहिप, बजरंग दल आदि हिंदू संगठनों का पिता है, पर आतंकवादी संगठन का ठप्पा लगा दिया है।

संघ को विश्व के अन्य हिस्सों में बदनाम संगठनों जैसे अल कायदा, लश्कर-ए-तय्यबा, हमास आदि की श्रेणी में रखा गया है संघ की आतंकवादियों के बारे में परिभाषा और समझ को गुजरात के मौजूदा मुख्यमंत्री और आर.एस.एस प्रचारक नरेंद्र मोदी ने इस प्रकार व्याख्यायित कियाः ''सारे मुसलमान आतंकवादी नहीं हैं, किंतु सारे आतंकवादी मुसलमान है।'' ऐसा कैसे हुआ कि मुसलमानों के खिलाफ आग उगलनेवाले संगठन पर खुद ऐसा ठप्पा लग गया।

ऐसा लगता है कि आतंकवाद से संबंधित प्रचलित विभिन्न परिभाषाओं में से उस एक को इस केंद्र ने आधार बनाया है, जो कि राजनीतिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए मासूम लोगों की जान लेता है। यह कहना जरूरी नहीं है कि इस परिभाषा में सामान्यतः सरकारें शामिल नहीं हैं। पिछले दिनों कुछ देशों को आतंकवादी कहा गया है और भारतीय जनता पार्टी अमेरिका से आग्रह करती रही है कि पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र घोषित किया जाए। कुछ देशों को अमेरिका ने खुद आतंकवादी देशों की सूची में डाला हुआ है। हम राज्य की हिंसा और उसके लक्ष्यों की यहां चर्चा नहीं करेंगे, जो कि काफी जटिल मामला है। हम आतंकवाद को परिभाषित करनेवालों के पक्षपात पर भी बात नहीं करेंगे। सीमित रूप में हम 'राजनीतिक लक्ष्यों के लिए मासूम लोगों की हत्या करने' की परिभाषा पर बात करेंगे। हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि अमेरिका स्थित इस केंद्र का मूल्यांकन सही है या नहीं।

यहां यह समझना आवश्यक है कि आतंकवाद लक्ष्य-विशेष वाले समूहों की विचारधारा से पैदा होता है। यह समझना और भी अहम है कि वे सभी, जो उस विचारधारा और लक्ष्य को निर्मित करते हैं, जो कि हिंसा की ओर ले जाती है, आतंकवादी है या वे ही असली आतंकवादी हैं। और यदि दोष का बंटवारा किया जाए तो जो तलवार, गोलियां या ए-के-47 का इस्तेमाल करते हैं या जो डब्लू.टी. सी पर विमान जा टकराते हैं या इसी तरह की अन्य कार्यवाई करते हैं, उन्हें ज़्यादा ज़िम्मेदार माना जाना चाहिए। निश्चय ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक कभी किसी को मारने के लिए व्यक्तिगत तौर पर हथियार नहीं उठायेंगे। यहां तक कि संघ की शाखाओं में प्रशिक्षण मात्र लाठी व डंडा चलाने के लिए दिया जाता है। हां, समय से ताल मिलाते हुए संघ की संतानों, बजरंग दल और दुर्गा वाहिनी ने बंदूकों का प्रशिक्षण तथा विहिप ने त्रिशूल रूपी छुरों का हजारों की संख्या में वितरण करना शुरू कर दिया है, लेकिन संघ की शाखाओं में इस पर सख्त मनाही है। लाठी चलाने के अलावा प्रशिक्षण का दूसरा हिस्सा बौद्धिक है। यह प्रशिक्षण अल्पसंख्यकों के खिलाफ ज़हर उगलने, धर्मनिरपेक्ष व लोकतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ नफरत फैलाने पर आधारित है। वह यहां तक कहता है कि हिंदुओं के इस देश में, अन्य यानी मुसलमान और ईसाई विदेशी हैं। इसके अलावा कम्युनिस्ट, मुसलमान और ईसाई हिंदू राष्ट्र के लिए आंतरिक खतरा हैं।

नफरत का जहर हर समुदाय के लिए बना-बनाया है। मुसलमानों की तुलना यवन सर्पो से की गयी है। प्रोफेसर बिपन चंद्रा, शाखा में प्रशिक्षण में क्या होता है, इसको सुनने का अपना अनुभव बताते हैं। रोज सुबह टहलते हुए उन्होंने शाखा में जाने वाले लड़कों को यह बतलाया जाते हुए सुना है कि मुसलमान सांप की तरह होते हैं। सपोले को मारना, सांप को मारने से आसान होता है। इस बौद्धिक अभ्यास का संदेश बिल्कुल साफ है। नफरत की यह प्रेरणा और पद्धति नाज़ी जर्मनी से लिए गए है।

संघ के सिद्धांतकार गोलवालकर ने इसको कुछ इस तरह से व्याख्यायित किया हैः ''जर्मनों का नस्लीय गौरव आज जीवंत विषय बन गया है। देश की शुद्धता और संस्कृति को बचाए रखने के लिए जर्मनी ने सेमेटिक नस्लों-यहूदियों का, देश से सफाया कर दुनिया को स्तब्ध कर दिया है। यह राष्ट्र गौरव का चरम है। जर्मनी ने यह भी दिखला दिया है कि आधारभूत तरीके से भिन्न नस्लों का समिश्रण होकर एक होना असंभव है। हम हिंदुस्तानियों के लिए यह एक अच्छा पाठ है, जिसे हमें सीखना चाहिए और उसका फायदा उठाना चाहिए।'' **(एम.एस.गोलवलकर, वी एंड अवर नेशनहुड डिफांइड, नागपुर 1938, पृष्ठ-27)।**

कभी आश्चर्य होता है कि क्या वास्तव में आर.एस.एस इस पर विश्वास करता होगा। पर स्तब्ध करनेवाली बात यह है कि संघ के एक वरिष्ठ सिद्धांतकार ने एक बातचीत के दौरान कहा कि अगर गांधी जैसा कद्दावर व्यक्ति 'मुस्लिम समस्या' को हल नहीं कर पाया

तो आज के छुटभैये छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों से क्या होने वाला है! उसके अनुसार (और प्रत्यक्षतः संघ के अनुसार) इस समस्या का एक ही हल है, जो 'अंतिम समाधान' के रूप में जाना जाता है। यह नफरत की विचारधारा है, जो बाल प्रशिक्षुओं के दिमाग में कूट-कूट कर डाल दी जाती है, और यही वह आधार है जिस पर सांप्रदायिक हिंसा की नींव पड़ती है। आर.एस.एस. की विचारधारा सबसे पहले जिस रूप में साकार हुई, वह थी गोडसे द्वारा गांधी की हत्या। जाहिर है कि संघ ने कभी भी इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया कि गोडसे आर.एस.एस प्रशिक्षित था और हिंदू महासभा में शामिल होने से पहले संघ का प्रचारक था। उसके भाई गोपाल गोडसे ने अपने अलग-अलग साक्षात्कारों में बार-बार कहा है कि उसने और नाथूराम ने संघ कभी नहीं छोड़ा था।

सांप्रदायिक हिंसा पर जांच आयोगों की अधिकतर रिपोर्टों **(जस्टिस रेड्डी, वितयातिल, वेणुगोपाल, मदन आदि) में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आयी है कि हर हिंसक वारदात में किसी ऐसे संगठन की भूमिका रही है जो या तो संघ से संबंधित था या फिर किसी प्रचारक द्वारा चलाया जा रहा था। रणनीति एकदम साफ है।** संघ स्वयं सेवकों को प्रशिक्षित करता है जो उसके काम को किसी अन्य संगठन से जुड़कर या कोई अलग संगठन बनाकर आगे बढ़ाते रहते हैं। इस रणनीति का फायदा यह है कि दंगों का दोष सीधा संघ पर नहीं लग सकता।

यह बात याद करने लायक है कि 1937 के चुनाव में धर्म का वास्ता देकर भी चुनाव न जीत पाने के बाद मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा ने, दूसरे-से-नफरत-करो की अपनी मुहिम तेज कर दी थी। नफरत के ये ज़हरीले बीज इस दौरान सक्रिय रहे और इनमें 1980 के बाद फल लगने लगे। यह दूसरे-से-नफरत-करो की विचारधारा अलग-अलग कनवेयर बैल्टों से गुजरती है और इसका आखिरी पड़ाव वहां पड़ता है जहां भोले-भाले गरीब समुदाय नफरत की विचारधारा के नशे में धुत, जो कि इच्छित परिणाम के लिए धर्म की भाषा में लपेट कर पिलाई जाती है, हथियार उठा लेते हैं।

हर आतंकवादी संगठन का अपना ही एक एजेंडा होता है अल कायदा को सी.आई.ए. द्वारा वाया पाकिस्तान प्रशिक्षित किया गया ताकि वह अफगानिस्तान पर समाजवादी रूस के कब्जे को उखाड़ सके। तमिलों पर सिंहलियों के प्रभुत्व की प्रतिक्रिया लिट्टे के रूप में हमारे सामने है। खालिस्तान सिख समुदाय की आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर गहरी असंतुष्टि की प्रतिक्रिया था। उल्फा भी जातीय समस्या को असंवेदनशील तरीके से हल करने की अभिव्यक्ति है। संघ और लीग, विभाजन के पहले, सामंतवादी तत्वों के भय की अभिव्यक्ति थे। क्योंकि उन्हें लगता था कि आधुनिक शिक्षा, औद्योगिकरण, आजादी, समानता तथा भाईचारे के मूल्य, संघर्षरत जनता की मुख्य विचारधारा बनते जा रहे हैं, उनके मूल्य और मान्यताओं के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। दूसरे, मध्यवर्ग का यही डर, अस्तित्व को लेकर चिंता, संघ की राजनीति में एक निश्चित रूप ले चुकी है। और दलितों और महिलाओं का सामने आना स्वयं के लिए सामाजिक और लैंगिक न्याय की मांग करना है। गूढ़ सामाजिक एजेंडा कुछ भी हो, संघ के काम के तौर तरीके और प्रणाली, विहिप, बजरंग दल और दुर्गा वाहिनी जैसों को बढ़ावा देते हैं। संभवतः संघ की कार्यप्रणाली के गतिविज्ञान की इसी गहरी समझ के चलते इस अनुसंधान केंद्र ने उसे आतंकवादी संगठन बतलाया हो।

आर.एस.एस का प्रशिक्षण दुतरफा होता है। एक है शारीरिक, खेल वगैरह। दूसरा है बौद्धिक। यह जो दूसरा प्रशिक्षण है वह अपनी संतानों को प्रेरित करता है कि वे लोगों को हथियार उठाने को भड़काएं और 'दूसरों' यानी 'दुश्मन' को बेदर्दी से कत्ल करें। किसी भी हिंसा या दंगे की चीरफाड़ बहुत ही दिलचस्प और जटिल होती है। कैसे एक आम दलित, आदिवासी, खाली पेट और अनिश्चित भविष्य वाला मजदूर आर.एस.एस के एजेंडे के सिपाही के रूप में परिवर्तित हो जाता है, यह ऐसा पेच है जिसे समाज-विज्ञानियों को समझना होगा। हो सकता है कि आर.एस.एस प्रचारक जब बैठकर धैर्यपूवर्क 'हिंदू मूल्यों', 'हिंदू राष्ट्र' पर चर्चा कर रहा हो, तो आर.एस.एस विचारधारा जनसंख्या के एक हिस्से को मासूमों को मारने के लिए और हिंसा का तांडव मचाने के लिए अपनी गिरफ्त में ले रही हो। इससे संघ हिंदुओं के एक हिस्से को आर.एस.एस के साथ करने का राजनीतिक लक्ष्य तो प्राप्त होता ही है। यह उनकी सत्ता में वापसी या उसकी अपनी ताकत को और मजबूत करता है। जिस परिभाषा से हमने शुरू किया था वह थी सत्ता या राजनीतिक एजेंडा के लिए मासूमों की हत्या करना आतंकवाद है और आर.एस.एस का काम ठीक यही है।

कभी-कभार ऊपरी तौर पर उलझन पैदा कर सकता है कि जैसे ओसामा या विश्व के विभिन्न हिस्सों में एके-47 चलाने वाले आतंकवादियों के विपरीत आर.एस.एस के स्वयं सेवक चुप्पी की मूर्ति नजर आते हैं। और आर.एस.एस के अभियान का यह सबसे ज्यादा चातुर्य से भरा तथा धूर्ततापूर्ण हिस्सा है। स्वयं बिना हथियार उठाए अल्पसंख्यकों को पिटवाना तथा मरवाना और अपने लक्ष्य को पाना। हिंसा सामाजिक और मनोवैज्ञानिक चालबाजी के जरिए दूसरे लोगों के ज़िम्मे छोड़ दी जाती है। यूं समझिए कि एके-47 निशाना चूक सकता है किंतु आर.एस.एस द्वारा प्रचारित नफरत की विचारधारा द्वारा सक्रिय और ज़हर भरे गए दिमाग कभी न कभी, कहीं न कहीं, हिंसक बनकर निकलेंगे ही, सवाल मात्र समय का है। इस संगठन ने आतंकवादी लक्ष्यों के लिए बड़ी चालाकी से संस्कृति का एक झूठा लबादा धारण कर रखा है। यह आतंकवादी संगठन एक पत्थर से कई शिकार करता है, ये चिड़ियाएं हैं समाज के कमजोर वर्ग और अल्पसंख्यक समुदाय। यह ज़ाहिर है कि इस अनुसंधान केंद्र की सूची से आर.एस.एस के नाम को हटाए जाने के लिए काफी हो-हल्ला मचाया जाएगा पर भारत के अल्पसंख्यकों के बड़े हिस्से और समाज के कमजोर वर्गों के लिए आर.एस.एस की संस्कृति आतंकवाद ही है।

'समयांतर' से साभार

फौज में इंसाफ की शक्ल

आई.एस.डी.

हिंदुस्तान की फौज में महिलाओं की भरती शुरू हुए (मेडिकल कोर के अलावा) अभी 15 साल भी नहीं हुए हैं। मेडिकल कोर के अलावा फौज की सभी महिला अफसर शार्ट सर्विस कमीशन में भरती की जाती हैं और अक्सर कमीशन की मियाद पूरी होने के बाद उन्हें फौज से बाहर कर दिया जाता है। शार्ट सर्विस कमीशन 10 साल के लिये होता है। अब यही मियाद 15 साल कर दी गयी है यानि लेफ्टिनेंट कर्नल तक के पद के लिये। यह बात गौरतलब है कि पहली बार हिंदुस्तान की फौज में किसी महिला अफसर का कोर्ट मार्शल हो रहा है। वायुसेना की अधिकारी अंजलि गुप्ता का कोर्ट मार्शल इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। फौज में कोर्ट मार्शल होते रहते हैं, कोर्ट मार्शल की न्याय के मानदंड़ों पर जाँच परख और आलोचना भी हुई है, प्रशासनिक तंत्र में भ्रष्टाचार, तानाशाही और लोकतंत्र के अभाव की बात भी हुई है पर अंजलि गुप्ता के केस की वजह से फौज में बनायी गयी न्यायिक प्रक्रिया यानि कोर्ट मार्शल के ऊपर बताये गये पहलुओं को महिलाओं के नज़रिये से समझने और परखने की मांग, महिला यौन-उत्पीड़न जैसी घटना को फौज में अगंभीर तरीके से लेने के कारण और फौज के पूरे ढाँचे के लोकतांत्रिककरण से जुड़े सवाल व्यापक रूप में सामने आये हैं। अंजलि गुप्ता नवम्बर 2003 में अपनी नयी पोस्टिंग पर ज्वाइन करने के लिये बैंगलूर पहुँची। पहुँचते ही उच्चस्थ अधिकारी ने रात में अंजलि गुप्ता के कमरे में अनाधिकार प्रवेश की चेष्टा की। अंजलि ने जब ये बात उच्च अधिकारियों को बताई तो उन्होंने उसकी बात को फौजी अंदाज़ में हंसी में उड़ा दी। अगले कुछ महीनों अंजलि एयरक्राफ्ट एंड सिस्टम्स टेस्टिंग इस्टेबलिशमेंट (ए.एस.टी.आई.) के काम करने के तौर-तरीकों से अवगत हुई। अंजलि का आरोप है कि उससे वेटरों और बावर्चियों की भर्ती के दौरान दो लाख रुपये इकट्ठे करने को कहा गया। उसे वायुसेना के स्कूल के लिये प्रधानाध्यापिका के तौर पर किसी विजय लक्ष्मी घोषाल के नाम को अनुमोदन करने को कहा गया। कमान अधिकारी अनिल चोपड़ा ने अंजलि को लोन लेकर वायुसेन कैंटीन से कार खरीदने और चोपड़ा की अपनी बेटी को उसकी शादी पर भेंट करने की माँग की। अंजलि ने जनवरी 2004 में एयर मार्शल भोजवानी से ये अनियमितताएँ बताने के लिये समय माँगा, जो उन्हें नहीं दिया गया। ज़ाहिर है उच्च अधिकारियों को अंजलि की यह पहल अच्छी नहीं लगी। हालात इतने बिगड़ गये कि फरवरी 2004 में अंजलि गुप्ता को तीन उच्च अधिकारियों के खिलाफ़ यौन-उत्पीड़न का मामला लेकर पुलिस में जाना पड़ा। जैसा कि हमेशा होता है बैंगलूर के पुलिस थानेदार ने बजाय रिपोर्ट दर्ज करने के अंजलि को कहा कि वो अपने उच्चतर अधिकारियों को इस मामले की सूचना दे। अंजलि ने कुछ खत लिखे। कुछ उच्च अधिकारियों ने खत लेने से मना कर दिया। ये सब खत मुहर के साथ अंजलि की मां के पास हैं। इस दौरान अंजलि को लगातार बताया गया कि वो असामाजिक है और अपने उच्च अधिकारियों और सहकर्मियों को पदानुसार सम्मान नहीं देती। ये सब झूठे और बेबुनियाद आरोप थे। फौज के उच्चस्थ अधिकारियों को उनकी पोल खुलना रास नहीं आ रही थी और उन्होंने तरह-तरह से उत्पीड़न शुरू किया। आखिरकार मजबूर होकर अंजलि गुप्ता को हाईकोर्ट जाना पड़ा। कर्नाटक हाईकोर्ट में याचिका दाखिल करने और महिला आयोग द्वारा वायुसेना के अधिकारियों के लिये लिखे गये पत्र के आधार पर वायुसेना ने आरोपी अधिकारियों के खिलाफ अप्रैल 2004 में जाँच अदालत गठित की। ज़ाहिर है आरोपी ये बर्दाशत नहीं कर सके और उन्होंने उत्पीड़न के नये-नये तरीके निकाले। वायुसेना दिवस पर अंजलि गुप्ता को कमेन्टेटर, यह कहकर कि चूंकि अंजलि के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होना है, नहीं बनने दिया। 23 जून, 2004 को आरोपी अधिकारी एयर कमोडोर चोपड़ा ने अंजलि को नोटिस भेजा जिसमें लिखा था कि अंजलि ने मेस में काम करने वाले लड़कों से 'अवैध माँग' यानि यौन संसर्ग की माँग की। अंजलि ने यह नोट स्वीकार करने से इंकार कर दिया। जब अंजलि का 11 साल का भतीजा कुछ दिनों के लिये उसके पास रहने आया तो अंजलि से कहा गया कि क्या वो अपने भतीजे के साथ 'रात में व्यस्त' रहती है ? मानसिक विकृति की इससे बड़ी मिसाल क्या हो सकती है ! अक्टूबर, 2004 में अंजलि के खिलाफ प्रारम्भिक सबूत जुटाने की कार्यवाही शुरू हुई जो मार्च 2005 में पूरी हो गई। अप्रैल में इन सबूतों की बिना पर कोर्ट मार्शल का गठन हुआ और कोर्ट मार्शल शुरू हो गया। अप्रैल 2005 में अंजलि को नज़रबंद कर दिया गया और किसी से भी मिलने-जुलने की मनाई कर दी गयी। नज़रबंदी का आधार ये था कि उसने अपनी उच्च न्यायालय में दाखिल याचिका में कहा था कि यौन-उत्पीड़न के कारण वो आत्महत्या तक करने को मजबूर हो सकती है। ऐसा कहने को वायुसेना के अधिकारियों ने अंजलि को मानसिक तौर पर बीमार माना और नज़रबंद कर दिया। 2 जून 2005 को अंजलि को मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण के बाद ठीक पाये जाने के बाद उस पर से नज़रबंदी उठा ली गयी।

अंजलि के कोर्ट मार्शल के पाँचों अधिकारी पुरुष हैं। अंजलि ने जिन अफसरों के खिलाफ आरोप लगाये थे उनमें से किसी के लिये भी कोर्ट मार्शल अभी तक गठित नहीं हुआ है। एक बात जो याद रखने के लायक है वो है कि कोर्ट मार्शल भारतीय फौज की आंतरिक न्याय प्रणाली है और ये वायुसेना अधिनियम के तहत चलती है। इन अदालतों में न्याय मिलने की उम्मीद ना के बराबर होती है और यही वजह है कि इसके फैसलों के खिलाफ पिछले कई सालों से हाइकोर्ट

और सुप्रीमकोर्ट में फरियादें होती रही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने अपने कई फैसलों में कहा है कि इन अधिनियमों में और कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया में लोकतांत्रिककरण के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय (नेचुरल जस्टिस) के सिद्धान्त का भी पालन हो। भारत के लॉ कमीशन ने अपनी 169वी रिपोर्ट में सैन्य अधिनियमों और कोर्ट मार्शल के नियमों में सुधार की सिफारिश की है। मतलब साफ है कि सुप्रीम कोर्ट ने यह माना है कि कोर्ट मार्शल के प्रावधान और उसकी बनावट इस तरह की है कि निष्पक्ष न्याय मिलना नामुमकिन है। कोर्ट मार्शल का गठन कमान अधिकारी करता है और कोर्ट मार्शल के सदस्य कमान अधिकारी के मातहत होते हैं और आरोपी को दोषी ठहराना पारदर्शिता के अभाव में महज एक औपचारिकता रह जाती है। कोर्ट मार्शल में समानता भी एक भ्रम बनकर रह जाती है।

सेना की एकतरफा इन्साफ की प्रक्रिया यानि कोर्ट मार्शल का सबसे ज्वलंत उदाहरण है खाम्बा जासूसी प्रकरण। उच्चाधिकारियों ने बिना किसी सबूत के 70वें दशक में 53 सैन्य अधिकारियों को कोर्ट मार्शल में पाकिस्तान के लिये जासूसी करने का दोषी पाया और सजा दी। सन 2000 में सुप्रीमकोर्ट ने उन सबको निर्दोष पाया और उनका वेतन और भत्ते के साथ बहाली का आदेश दिया। सबसे ज़्यादा दुखद बात है कि इन अधिकारियों को इनके ही उच्चतम अधिकारियों ने अपराध स्वीकार करने के लिये घोर शारीरिक और मानसिक यातनाएं दीं। अंजलि गुप्ता तो महिला है। शारीरिक-मानसिक यातनायें उनको भी दी जायेंगी, गुनाह कबूल करवाने के लिये जैसा कि इन अधिकारियों के साथ हुआ। अंजलि गुप्ता के एडवोकेट को भी हटाया जा सकता है। अंजलि गुप्ता के केस में वायुसेना अधिकारियों के काम दिखाई देते हैं। अंजलि गुप्ता की शिकायतें अनुशासनहीनता मानी गईं, सुरक्षा का निहायत बेहुदा तर्क देकर अंजलि को नज़रबंद किया गया और आरोपी अफसरों के खिलाफ अभी तक जाँच ही चल रही है।

कोर्ट मार्शल कैसे मुकदमा चलाती है उसकी मिसाल जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के सामने आये एक केस से मिलती है। केस में उच्चाधिकारी के खिलाफ अपने मातहत अधिकारी के साथ अप्रकृतिक यौनाचार का आरोप था। कोर्ट मार्शल ने ये माना कि अधिकारी ने ये कृत्य किया पर साथ ही ये भी कहा कि ये पीड़ित की सहमति से हुआ था। और उच्चअधिकारी निर्दोष करार दे दिया गया। दोषी अधिकारी (यानि पीड़ित) को सेना से निकाले जाने का नोटिस दिया (ले. कर्नल ओ.एस. परिहार बनाम भारतीय संघ एस. डब्ल्यू.पी. 598 फैसले की तारीख 5.10.2000)। ये बात ध्यान देने लायक है कि भारतीय दंड संहिता के मुताबिक अप्राकृतिक यौनाचार सहमति से हो या असहमति से हो, दंडनीय है। पर सेना की अदालत अगर अपनी बदी पर उतर आये तो, जैसा कि ऊपर के मामले में हुआ, कानून की अनदेखी कर भी एक अधिकारी को बेगुनाह करार दे सकती है। सेनाध्यक्ष या सुप्रीमकोर्ट भी इस फैसले को नहीं बदल सकते।

ज़ाहिर है ये कोर्ट मार्शल या तथाकथित फौजी अदालतें इन्साफ की प्रक्रिया पर मज़ाक हैं। ये भारतीय दंड संहिता को नहीं मानते, औपनिवेशिक विरासत के प्रतीक हैं और इन्साफ की प्रक्रिया के जनतांत्रिककरण के विरोध में खड़े हैं। साथ ही सेना आज भी पुरुष प्रधान है और यौन उत्पीड़न के मामले में पूरी तरह असंवेदनशील है। बावजूद इसके कि सुप्रीमकोर्ट ने आदेश दिये हैं कि हर शिक्षा और इसके अन्य संस्थानों में जेंडर सेन्सीटाईजेशन पर एक अलग कमिटी होनी चाहिये जो यौन उत्पीड़न के मामलों की जाँच करेगी और उसके फैसलों के खिलाफ कहीं भी अपील नहीं हो पायेगी, आज तक सेना में इस तरह का कोई प्रावधान नहीं है। एक के बाद एक कई प्रकरण गिनाये जा सकते है जहाँ सेना में बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार है वो 'तहलका' हो या बोफोर्स या ताबूतों की खरीदी या दूसरे अस्त्रों या विमानों की खरीदी। इसके अलावा एक के बाद एक कई प्रकरण गिनाये जा सकते हैं जहाँ सेना ने एक काबिल अफसर की तरक्की जानबूझकर रोकी।

अभी हाल ही में वायुसेना के एक एयर वाईस मार्शल के केस में सुप्रीम कोर्ट ने वायुसेना को आदेश दिया कि वो उसकी तरक्की बहाल करे और वो भी जिस तारीख से तरक्की होनी थी। सरकार को इस फैसले की वजह से एक अतिरिक्त स्थान बनाना पड़ा था। ऊपर लिखे से यह साफ साबित हो जाता है कि कोर्ट मार्शल या फौजी अदालतें इंसाफ और न्यायिक प्रक्रिया के नाम पर एक बड़े मज़ाक से ज़्यादा कुछ नहीं है। इस अमानवीय और औपनिवेशिक परम्परा में फले-फूले न्यायिक ढाँचे में अंजलि गुप्ता को न्याय मिलेगा इसकी कोई उम्मीद नज़र नहीं आती। हो सकता है उसे मानसिक तौर पर अस्वस्थ या पागल करार देकर फौज से निकाल दिया जाये। अंजलि गुप्ता का केस अभी चल ही रहा है कि एक और वायुसेना महिला अफसर ने हाईकोर्ट में याचिका दायर कर वायुसेना के एक अधिकारी पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया है। आरोप में कहा गया है कि हैदराबाद स्थित वायुसेना अकादमी के विंगं कमांडर एच.आर. विश्वनाथ ने इस महिला से यौन संबंध बनाने के लिये कहा था। महिला ने इन्कार करने पर उसे तीन विषयों में फेल कर दिया और ट्रेनिंग पूरी होने के तीन दिन पहले ही नौकरी से निलंबित कर दिया। खंडपीठ ने कोर्ट आफ इन्क्वायरी से जुड़े सभी कागज़ात मंगाये हैं। फौज की कोर्ट आफ इन्क्वायरी में आरोपित गवाह नहीं बुला सकता इसलिये अक्सर फैसले एकतरफा होते हैं।

ये दोनों केस सैन्य अधिनियमों में मूलभूत बदलावों की ज़रूरत की तरफ इशारा करते है। साथ ही एक और तथ्य की तरफ भी इशारा करता है कि पुरुष-केंद्रित सेना भ्रष्टाचार से लिप्त होने के साथ-साथ महिलाओं के प्रति बिल्कुल भी संवेदनशील नहीं है। समय आ गया है कि सैन्य बलों को लोकतांत्रिक और जेंडरगत समानता में विश्वास रखने वाली संस्था के रूप में अपने आपको पुर्नगठित करना होगा। इस प्रक्रिया में मानव अधिकार आयोग, मीडिया और प्रेस एक बहुत ही अहम भूमिका अदा कर सकते हैं।

मतलब एक देशव्यापी सार्वजनिक बहस की शुरूआत कर सकते हैं। पर वे ऐसा करेंगे क्या ?

नौटंकी एक साझी विरासत

आई.एस.डी.

भारतीय पारम्परिक थियेटर को दो मूल धाराओं में बांट कर देखा जा सकता हैः 'धार्मिक' और 'लौकिक'। नौटंकी एक धर्मनिरपेक्ष विधा है। ये इस बात से ज़ाहिर होता है कि ये हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचलित धार्मिक थियेटर 'रामलीला' और 'रासलीला' की तरह विशेष देवी-देवताओं की स्तुति और पूजा में नहीं की जाती और न ही इसका कोई वार्षिक प्रारूप है (जैसे दशहरा या कृष्णाष्टमी)। नौटंकी केवल मनोरंजन का माध्यम है इसमें स्फूर्तिपूर्ण नृत्य, ढोल पीटने की आवाज़ और पूरी आवाज़ में गीत गाना, ये सब अपने आप एक ऐसा वातावरण बना देता है जो कि न तो धार्मिकता और न ही नैतिकता पर ज़ोर देता है। नौटंकी रामायण या महाभारत से भी प्रेरित नहीं है और करने वाले किसी मंदिर या पूजा संस्थान से नहीं जुड़े होते।

नौटंकी की धर्मनिरपेक्षता इस बात से भी साबित होती है कि नौटंकी हिन्दी और उर्दू दोनों की सांस्कृतिक परम्परा से जुड़े विषयों का मंचन करती है जैसे 'लैला मजनू' और 'शीरी फरहाद' नौटंकी के सबसे मशहूर प्रेम प्रकरण हैं। मध्यपूर्व की कुछ कहानियां भी नौटंकी ने पूरी तरह अपनायीं हैं। मंचन के दौरान हिंदी और उर्दू दोनों का, दोनों भाषाओं की लय और ताल का इस्तेमाल नौटंकी के धर्मनिरपेक्ष साझी विरासत होने का एक और सबूत है। इसी तरह नौटंकी के ग्रुप में दोनों हिन्दू और मुसलमान होते हैं और दर्शकों में भी दोनों ही रहते हैं।

जहां तक कहानियों और विषयों का सवाल है वहां नौटंकी में दोनों समुदायों से संबंधित अर्ध-धार्मिक, नैतिकता और निष्ठा से जुड़े विषयों का समावेश होता है। मशहूर कहानियां जैसे 'राजा हरिश्चंद्र', साधु संतों की कहानियां : 'गोपीचंद', 'भतृरी', 'पूरन मल' और अन्य या फिर बलिदान वाली कहानियां जैसे 'प्रहलाद' और 'ध्रुव', इसके अलावा जादूई और चमत्कारिक कहानियां भी नौटंकी में खेली जाती हैं। नौटंकी में पंजाब के दलितों के पूज्य 'गोगा पीर' या 'ज़हार पीर' भी खेला जाता है। अक्सर नौटंकी की कम्पनियों में सभी समुदायों के लोग होते हैं, इनके विज्ञापन का ढंग भी अलग होता है : प्लेकार्डस, ढोल पीटना या पब्लिक में ऐलान करना। खेल की जगह अलग होती है और स्टेज रिहायशी तम्बुओं से थोड़ा दूर होता है। नौटंकी, इस तरह देखा जाए तो, पाश्चात्य थियेटर से प्रभावित शहरी थियेटर से बिलकुल अलग है। उसे देखने वाले आज भी किसान, मजदूर, खेतिहर, गरीब और दलित हैं मतलब सर्वहारा वर्ग जबकि शहरी थियेटर के दर्शक ज़्यादातर मध्यम वर्ग से आते हैं। नौटंकी के कलाकार उसी प्रदेश से आते हैं जहां वे खेलते हैं। ज़्यादातर कलाकार दलित जातियों से आते हैं पर सवर्ण भी होते हैं। इनमें भी ज़्यादातर कारीगर जातियों का प्राधान्य होता है। मिसाल के तौर पर हाथरस के कवि और गायक उस्ताद ईदारमन, चिरंजी लाल, गणेशीलाल और गोविन्दराम, रंगरेज जाति के यानी छीपी थे। कानपुर के श्रीकृष्ण खत्री पहलवान दर्ज़ी थे। बनारस के नौटंकी के ट्रुप (सत्तरवें दशक में) में ज़्यादातर मुसलमान कलाकार - डफली, भांड और चमार जाति से थे। लखनऊ के पंडित काकूजी जनेऊ धारण करते थे और अपने को ब्राह्मण कहते थे। वो हमेशा मुसलमान कलाकारों जैसे आशिक हुसैन और मलिका बेगम के साथ रहे और अभिनय छोड़ने के बाद ट्रुप के कपड़े सीने का काम करते रहे। नौटंकी में महिला कलाकार अक्सर दलित बैरिन या नटिनी जाति से होती हैं जो अक्सर नाच गाने और वैश्यावृति से जुड़ी होती हैं।

कुछ भारतीय विशेषज्ञों ने नौटंकी को लोक नाट्य विधा कहना शुरू कर दिया है। लेकिन यह गलत है। नौटंकी में व्यावसायिक कलाकार होते हैं। अक्सर उस गांव के नहीं होते जहां नौटंकी खेली जा रही होती है। चूंकि इसका त्योहारों से कोई संबंध नहीं होता इस तरह नौटंकी को पाप्यूलर थियेटर का नाम भी दिया जा सकता है।

आज के बाज़ारीकरण के दौर में नौटंकी को मास कल्चर (आम जन की संस्कृति) के रूप में भी देखा जा सकता है। आज नौटंकी - रिकार्डों, केसेटों, फिल्मों और टीवी के माध्यम से सभी दर्शकों तक पहुंच रही है। नौटंकी ड्रामें अब किताबों के रूप में खरीदे जा सकते हैं। इस सबके बावजूद नौटंकी को आज एक ऐसी संगीत, विश्वासों, और सभी समुदायों के सांस्कृतिक धारा के रूप में देखा जा सकता है जो शहरी और ग्रामीण दर्शक के बीच संवाद और संबंध बनाने का काम करती है। नौटंकी ने कहानियों और कविताओं के माध्यम से शहरी और ग्रामीण, साक्षर और निरक्षर, हिन्दू और मुसलमान दर्शकों को एक दूसरे से जोड़ा है। चलता फिरता ट्रुप अपने साथ गांव से आए कामगार के लिए गांव की ज़िन्दगी की खबर लाता है और इसी तरह गांव को शहर के सामाजिक इतिहास से अवगत कराता है। इस नज़रिए से नौटंकी को अंर्तवती या मध्यमवर्ती (इनटरमीडिएरी) थियेटर भी कहा जा सकता है। अगर संस्कृत नाटक परम्परा से देखा जाए तो नौटंकी को उपरूपक और संगीत कहा जा सकता है। जैसा कि हम बता चुके है कि जहां तक नौटंकी में विषयों का सवाल है तो नौटंकी ने अरबी और फारसी से प्रेम कहानियां, संस्कृत से महाकाव्य और पुराण, राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश से लोक महाकाव्य, साधु सन्तों, राजाओं, स्थानीय नायकों, उपन्यास, ऐतिहासिक घटनाओं और अखबारों सभी से लिए हैं। ज़्यादातर नाटक शौर्य और प्रेम, और वर्तमान सामाजिक जीवन पर आधारित

होते हैं। इन कहानियों को संगीतात्मक रूप दिया जाता है। नौटंकी में हिन्दी कविता पद्धित (दोहा और चौबोला) के साथ साथ प्रादेशिक लोकसंगीत विधाओं जैसे दादरा, ठुमरी, सावन, होली, मांड, लावणी आदि और उर्दू से गज़ल, शेर और कव्वाली का इस्तेमाल किया जाता है। लय, ताल और तिहाई का ख्याल रखा जाता है। इस तरह नौटंकी एक ऐसी विधा है जिसने अपने आप में सभी कुछ आत्मसात कर लिया है और भविष्य में भी सभी धर्मनिरपेक्ष धाराओं को आत्मसात करने को तैयार है।

बीसवीं सदी से पहले आज का नौटंकी थियेटर 'स्वांग' के नाम से जाना जाता था। शब्द 'स्वांग' और उसका पयार्यवाची शब्द 'सांग' 'संगीत' शब्द से जुड़ा है जो पहले संगीतमय कथावाचन विधा के लिए जाना जाता था। 1920 के बाद 'स्वांग' शब्द की जगह नौटंकी ने ले ली। वैसे आज भी हाथरस-ब्रज प्रदेश में खेली जाने वाली 'नौटंकी' को 'स्वांग' के नाम से जाना जाता था।

'स्वांग' थियेटर की उत्पति उन्नीसवीं सदी के बीच से मानी जाती है। शुरू के ड्रामा 'प्रहलाद संगीत' और 'गोपीनाथ राजा के सांग' ने आगे आने वालों विषयों और छंद के बीज बोये जो हाथरस और कानपुर परम्परा में पूरी तरह प्रफुल्लित हुए। 'स्वांग' एक धर्मनिरपेक्ष और आम जनता के थियेटर के रूप में प्रस्थापित हुआ है हालांकि कुछ का मानना है कि इसकी जड़ में धार्मिक लीलाओं या फिर मध्यकालीन भारत की भक्तिमयता थी। लेकिन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वांग आम जनता के मनोरंजन की विधा के रूप में ही विकसित हुआ और अपने विकास में ये लोकनाट्य परम्पराओं और शहरी थियेटर की परम्पराओं से प्रभावित भी रहा।

उत्तर भारत में दो धार्मिक लीलाएं 'रामलीला' और 'रासलीला', धर्मनिरपेक्ष 'स्वांग' थियेटर से पहले प्रचलित थीं। 'रामलीला' तुलसीदास कृत रामचरितमानस और 'रासलीला' कृष्ण के प्रेम जीवन पर आधारित थी। जहां तक धार्मिक थियेटर की विधा का इतिहास है रामलीला के बारे में तो सभी जानते हैं पर कृष्ण थियेटर या रासलीला के बारे में कम ही जानते हैं। रासलीला कृष्ण संप्रदाय से जुड़ी है। कृष्ण संप्रदाय की तरह कृष्ण थियेटर का इतिहास 'वेदों' से भी पुराना माना गया है। प्राचीन भारतीय नाटक या 'संवाद' संस्कृत भाषा में नही बल्कि प्राकृत (संस्कृत की अपभ्रंश) में लिखे गये थे। यूँ तो कृष्ण थियेटर भारत के सभी प्रदेशों में पाया जाता है पर केरल, असम, गोमान्तक क्षेत्र, उत्तर भारत में प्रमुखतः पाया जाता है। कुछ प्रमुख **कृष्ण थियेटरों** के बारे में नीचे बताया जा रहा है :

कृष्ण आत्तम कृष्ण गाथा आधारित ये बहुरंगी नाटक विधा सत्रहवीं सदी के मध्य में केरल में पैदा हुई। इसने प्राचीन कोडीयत्तम थियेटर और कत्थककली को बहुत प्रभावित किया। कृष्ण आत्तम आठ नाटकों की एक श्रृखंला है जो आठ रातों में खेले जाते है और कृष्ण की पूरी कहानी बताते हैं। ये नाट्यशैली कत्थककली से काफी मिलती-जुलती है। कवि जयदेव का **गीत-गोविन्द** एक संगीत ओपेरा भारत के कृष्ण थियेटर में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। जयदेव ने ये कविता-नाटक, नाटक विधा (गंधर्व कला) में निपुण वैष्णवों के लिये रची थी। ये एक भावना प्रधान प्रेम गाथा है। इसमें अध्यात्म भी निहित है। **रास-लीला** - कृष्ण का गोपियों के साथ पूर्णमाशी की रात के नाच को रास का नाम दिया गया है। लीला का अर्थ है ग्वाले कृष्ण के दैविक चमत्कारों का वर्णन। कृष्ण संप्रदाय में इस संगीत नृत्य का बहुत ही अनुष्ठानिक महत्व है। रास और भगवान कृष्ण की लीला की परम्परा बहुत पुरानी है। कला - छोटे, खूबसूरत और अपने नाटक और संगीत के लिये जाने जाने वाले गोमान्तक क्षेत्र में (सहयाद्री के पहाड़ों और अरब सागर के बीच स्थित), कृष्ण थियेटर की अनेक विधाएँ प्राचीन काल से चली आ रही हैं और आज भी प्रचलित है। प्राचीन लोक-नाटक विधा '**कला**' ने कृष्ण थियेटर के बीज बोये जो बाद में दशावतार कला, गोपाल कला और गउलान कला के नाम से जाने गये। इस कला का कृष्ण मिथक के संदर्भ में काफी महत्व है। **अनकाई नट** - सोलहवीं सदी में असम में नव-वैष्णव वादी आंदोलन के दौरान जो कृष्ण नाटक उभरा उसे 'अनकाई नट' के नाम से जाना जाता है। ये संगीत-एकांकी कृष्ण गाथा को ब्यान करता है। साथ ही यह विधा पारम्परिक, क्लासिकल और लोक परम्परा का अद्भूत और सुन्दरतम मिश्रण है।

'**राम लीला**' बनारस प्रदेश में बड़े स्तर पर प्रचलित थी जबकि '**रासलीला**' ब्रज और वृंदावन-कृष्ण की जन्मभूमि में। इसके अलावा बहुत सी चलती फिरती नाटक मंडलियाँ 'रामलीला' और 'रासलीला' गांव गांव जाकर खेला करती थी। इन 'लीला' मंडलियों ने गांवों में जन थियेटर का विकास किया और 'स्वांग' और 'नौटंकी' के बीज बोये। 'लीला' थियेटर, 'स्वांग' और 'नौटंकी' में बहुत सी समान परम्पराएं हैः खुले आसमान के नीचे (ओपन-एयर मंचन), संगीत, नृत्य और पौराणिक देवकथाओं का इस्तेमाल। इनमें विभिन्नताएं भी हैं। लीलाएं भगवान में आस्था और प्रेम बढ़ाने के उद्देश्य से की जाती हैं और अभिनेता, ज़्यादातर ब्राह्मण बच्चे, भगवान के रूप में पेश किये जाते हैं उधर 'स्वांग' और नौटंकी का उद्देश्य मनोरंजन करना, कामुकता जगाना और कभी कभी डर जगाने तक होता है। 'लीला' एक पुजारी, किसी बड़े राजा या फिर आज किसी सोसायटी के आधिपत्य में खेली जाती है। 'नौटंकी' आज भी टिकट खरीद कर देखी जाती है। 'लीलाओं' की भाषा उच्च वर्ग की और साहित्यिक होती है जबकि 'नौटंकी' सबकी समझ में आने वाली रोजमर्रा और आम आदमी की भाषा में खेली जाती है। आइन-ए-अकबरी में अबुल फैजी ने नाट्यमंडली को 'भगतिया' का नाम दिया यानि जो बहुरूपिया बनकर गीत गाते हैं और नकल उतारने में माहिर होते हैं। मौलाना गनीमत की मसनवी नौरंग-ए-इश्क (1685) में भगतबाज़ों का जिक्र किया गया है। ये लोग बहुरूपिये होते हैं और संगीत वाद्यों को बजाते है। इतिहासकारों के मुताबिक भांड, नकलची और नट सब प्रदेशों में पाये जाते थे।

'स्वांग' की पहली लिखित पांडूलिपी ब्रजभाषा में 1686-1689 के बीच रसरूप द्वारा लिखित 'हास्यनव' में पायी जाती है। अठाहरवीं सदी में सोमनाथ चतुर्वेदी द्वारा लिखित (1752) में 'माधव विनोद' है। 'प्रबोध चंद्रोदय' में भी कई ड्रामों का नाम है। ब्रज भाषा में ड्रामों और उन्नीसवीं सदी के 'स्वांग' में काफी विभिन्नताएं हैः उनकी भाषा

साहित्यिक ब्रज है, छंद में दोहा, चौपाई और सवाई का इस्तेमाल है और मंचन अक्सर राजदरबार में न कि आम जनता के सामने होता था। 'स्वांग' जन नाट्य विद्या है आम जनता के सामने खेला जाता है। इसमें लौकिक, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक कविता का इस्तेमाल होता है जो नट और दूसरे कलाकार गाया करते थे।

ब्रज भाषा के ड्रामों में 'ख्याल' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। जिसका मतलब भी ड्रामा होता है। 'ख्याल' शब्द तीन अर्थ बताता हैः सतरहवीं सदी से प्रचलित शास्त्रीय हिंदुस्तानी मौखिक विधा, मारवाड़ी और राजस्थान की दूसरी बोलियों में लिखा गया राजस्थान का लोकनाट्य और 'लावणी', हिंदुस्तानी लोक कविता जो उसी समय रची और गायी जाती है। 'ख्याल' का मतलब भी वैसे खेल यानी मनोरंजन यानी ड्रामा है। मतलब लोकनाट्य से जुड़ा है। सबसे पहले सोमनाथ चतुर्वेदी ने अपने 'माधव विनोद' में 'ख्याल' शब्द का इस्तेमाल किया। घोन्कल मिश्रा ने (1799) 'प्रबोध चंद्रोदय' में 'ख्याल' शब्द का इस्तेमाल किया। मतलब ये शब्द अठारहवीं सदी से प्रचलित है। राजस्थान में 'ख्याल' 1750 में शुरू हुआ। राजस्थान में ये होली के बाद रात में देर सुबह तक चबूतरों पर गांव-गांव जाकर और शहरों में खेला जाता है। राजपूताने की शौर्य और प्रेम गाथाएं इसका विषय होती हैं। प्रेमगाथाओं में 'ढोला मारू', 'पन्ना विरामद', 'सदाब्रत सलंगिया' और शौर्य गाथाओं में 'राणा रतन सिंह', और 'डूंगर सिह' का नाम आता है। छिंदवाड़ा में 'शेखावती' और जोधपुर के आसपास 'कुचामन' परम्परा में 'ख्याल' खेला जाता है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि आगरा-भरतपुर प्रदेश 'ख्याल' की जन्मभूमि है और बाद में 'ख्याल' सारे उत्तर भारत में फैला। आज स्थिति यह है कि ये विधा आज हर प्रदेश की सांस्कृतिक और भाषाई पहचान से जुड़ गयी हैः राजस्थान में 'ख्याल', उत्तरप्रदेश में 'नौटंकी', हरियाणा में 'सांग' (स्वांग) और मध्य प्रदेश में 'मंच'।

'ख्याल' की काव्य परम्परा विभिन्न धर्मो के अनुयायीओं के बीच दार्शनिक बहस से जुड़ी है मतलब शास्त्रार्थ, समस्या पूर्ति और संगीतमय संवाद यानि सवाल-जवाब दूसरे शब्दों में 'तुर्रा-कलगी' परम्परा से बहस जुड़ी है। इस परम्परा में दो प्रतिस्पर्धी 'लावणी' या 'ख्याल' विधा में ढोलक और चाँग बजाते हुए एक दूसरे से सीधे सवाल जवाब करते हैं। 'तुर्रा' शैवाईटों से जुड़ा है और 'कलगी' शक्ति से। दोनों प्रतिस्पर्धी अखाड़ों में बंट जाते हैं और इस प्रतिस्पर्धा को 'दंगल' का नाम दिया जाता है। 'तुर्रा-कलगी' की विधा महाराष्ट्र में लोक कविता के रूप में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में प्रारम्भ हुई। इससे पहले धार्मिक शास्त्रार्थ को महाराष्ट्र में 'गोंधल' के नाम से जाना जाता था। दोनों विधाओं में शिव बनाम शक्ति, पुरूष बनाम प्रकृति, ब्रह्म बनाम माया, निर्गुण बनाम सगुण इनको लेकर शास्त्रार्थ होता था। 'गोंधल' और 'तुर्रा-कलगी' परम्परा दोनों बाद में महाराष्ट्र के लोकनाट्य 'तमाशा' का हिस्सा बन गयीं। 'तमाशे' में शिव और पार्वती के बीच 'लावणी' विधा में सवाल जवाब होते हैं। इसके बाद एक 'गाउलान' नाम का कामुक नृत्य होता है। 'तमाशे' में 'तुर्रा-कलगी' परम्परा का प्रभाव पाया जाता है। इसलिये इसमें 'झगड़ा' या सवाल-जवाब होते हैं। 'तमाशा' करने वाली मंडलियां अपने को 'तुर्रा' और 'कलगी' का नाम देती हैं। ऐसा माना जाता है कि 'तुर्रा-कलगी' मंडलियां अपनी 'लावणी' के साथ महाराष्ट्र से उत्तर भारत में मराठा सेना के साथ साथ आयीं। 1910 में ये सहारनपुर (उ.प्र.) में पायी गयी। म. प्र. में ये 'मंच' या मच, चितौड़ और घोसुन्डा (राजस्थान) में 'ख्याल' से जुड़ गयीं। बंगाल में इसी तरह के ड्रामों को 'कबि' या 'कवि' कहा गया है। 'कबि' शिव, शक्ति और कृष्ण या दूसरे मिथकों के लेकर दो मंडलियों के बीच गाया जाता है। बाद में ये 'जात्रा' का हिस्सा बन गया।

लोक नाटक 'स्वांग' ने भी 'तुर्रा-कलगी' परम्परा को अपने में जोड़ लिया। प्रतिस्पर्धी अपने को तुर्रा-कलगी का नाम देने लगे। सवाल जवाब के अलावा तुर्रा-कलगी की एक और विरासत है जो 'स्वांग', 'भगत', 'ख्याल' और 'मंच' में पायी जाती है और वो है 'लावणी'। गैर ड्रामा हिन्दी कविता में उन्नीसवीं सदी के उतरार्ध में 'लावणी' का बहुत प्रभाव देखा गया। हिन्दु मुस्लिम दोनों कवियों ने कृष्ण और इस्लामिक विषयों पर 'लावणी' लिखी मिसाल के तौर आशिक और माशूक के बीच इश्क और प्रेम। लखनऊ में उन्नीसवीं सदी में 'लावणी' लिखने वाले कई कवि थे। साफ ज़ाहिर है 'लावणी' कविता की परम्परा उत्तर भारत की लोक नाट्य परम्परा का एक हिस्सा बन गयी।

'स्वांग' में खेली गयी कहानियों खासकर 'गोपीचंद' और 'पूरनमल' में पंजाब के गुरू गोरखनाथ के अनुयायीयों यानि 'नाथ योगियों' का बहुत बड़ा योगदान रहा है। 'नाथयोगी' संसार का त्याग, जादूई, तांत्रिक और अध्यात्म में विश्वास रखते थे। नाथयोगी, 'नाथ' योगी या जोगी के नाम से जाने जाते थे। ये लोग गोपीचंद को चौरासी सिद्दों में से एक सिद्ध मानते है। गांवों में नाथ योगी, ज़र्रा, हकीम, जादूगर और चमत्कारिक विद्या में निपुण जाने जाते थे। नाथ योगियों के तीर्थ स्थल बलूचिस्तान में हिंगलाज, गुजरात में घिनोघर, पंजाब में तिल्ला, महाराष्ट्र, नेपाल और बंगाल में पाये जाते है। नाथयोगी अक्सर भिखारी जाति से आते थे। बनारस में ये 'भतृरी', मेरठ में 'गोगा' गाने वालों के नाम से जाने जाते है। 'स्वांग' में 'राजा गोपीचंद', 'गुरू गोगा', 'सिला दाई', और 'राजा नल' गाये जाते है। इस तरह उत्तर भारत में धर्म निरपेक्ष थियेटर का विकास पंद्रहवी सदी से शुरू हुआ माना जा सकता है।

नवाब वाजिदअली शाह थियेटर के बड़े शौकिन थे। वो खुद 'रासलीला' में हिस्सा लिया करते थे। उन्होंने एक नाटक 'राधा कन्हैया का किस्सा' भी लिखा था जिसे 1843 में हुजूरबाग में खेला गया था। इसके अलावा उन्होंने शास्त्रीय नृत्य 'कत्थक' और अर्धशास्त्रीय संगीत 'ठुमरी' को बढ़ावा दिया। वाजिद अली के ज़माने में ही आगा हसन अमानत का पाश्चात्य ओपेरा पर आधारित नाटक 'इंद्रसभा' लखनऊ में खेला गया। 'इंद्रसभा' ने उत्तर भारत में लोक नाटक के नये आयाम कायम किये। इस नाटक में दोनों हिंदु मुस्लिम कथानक, छंद और हिन्दी उर्दू भाषा दिखाई पड़ते हैं। इसमें कथा कथन, कविता, संगीत और नृत्य सभी मिल जाते हैं। इस तरह 'इंद्रसभा' एक हिंदु मुस्लिम यानि

धर्मनिरपेक्ष थियेटर की गर्वीली मिसाल बना। 'इंद्रसभा' के बाद से 'स्वांग' थियेटर में इस्लामिक प्रभाव भी नज़र आने लगाः स्टेज पर महलों के दरवाजे, पेंट किये हुए पर्दे, दरबारी माहौल मतलब नवाबी पहनावा, तुर्की टोपी और जेवर। उर्दू का चलन भी बढ़ा। 'बेटा जी' और 'प्यारे जी' जैसे संबोधनों की जगह 'लख्ते जिगर' और 'जानेमन' जैसे संबोधनों ने ले ली। 'स्वांग' में अब उर्दू कहानियां जैसे 'सियाहपोश', 'बेनज़ीर', 'बदर ए मुनीर' और 'लैला मजनूं' भी आ गयीं। 'कत्थक', 'ठुमरी' और 'गज़ल' भी लोक-मनोरंजन का हिस्सा बन गये। साथ ही लोक गीत - 'होली', 'बसन्त', 'दादरा', 'सावन' और 'बिहाग' भी 'स्वांग' में शामिल हो गये। हाथरस परम्परा में ये सब सबसे ज़्यादा देखने को मिलता है।

अगर एक तरफ 'स्वांग' या 'नौटंकी' अपने विकास में धर्म-निरपेक्षता और लोक मनोरंजन के स्त्रोत बन रहे थे, हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति के संगमस्थल बन रहे थे, उर्दू हिन्दी दोनों भाषाओं को अपने में समा रहे थे, प्रादेशिक विधाओं से परस्पर प्रभावित हो रहे थे, तो दूसरी तरफ पारसी थियेटर की कुछ परम्पराओं को भी अपना रहे थे। हम जानते हैं पारसी थियेटर की शुरूआत अंगरेजों की देन है और ये यूरोपीय थियेटर से प्रभावित था। इसमें हिन्दी और उर्दू दोनों का इस्तेमाल होता था इसके अलावा प्रादेशिक भाषाओं गुजराती, बंगला और मराठी का भी इस्तेमाल किया जाता था। 'राजा हरिश्चन्द्र', 'प्रहलाद', 'नल दमयंती', 'सावित्री' और 'शकुन्तला' पारसी थियेटर में आम खेले जाते थे। इसी तरह 'शीरी फरआद', 'लैला मजनूं', 'बेनज़ीर', 'बद्र ए मुनीर' और 'गुल बकावली' भी। जहां तक अंग्रेजी भाषा से थियेटर का सवाल है उनमें शेक्सपीयर सबसे प्रसिद्ध थे। कानपुर 'नौटंकी' परम्परा में पारसी थियेटर का सबसे ज़्यादा प्रभाव नज़र आता है।

इस तरह हम देखते हैं कि उत्तर भारत खासकर कानपुर, हाथरस और ब्रज की 'नौटंकी' या 'स्वांग' लोक मनोरंजन की ये धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक लोक नाट्य विधा विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों में अपने अपने प्रदेश में जैसे राजस्थान में 'ख्याल', मध्य प्रदेश में 'मंच', बंगाल में 'जात्र', महाराष्ट्र में 'तमाशा' और गुजरात में 'मवाई' का नाम लिये विभिन्न प्रभावों को आत्मसात करती हुई अपनी मौलिकता और प्रादेशिक पहचान बनाये हुए है और साझी विरासत की जीवन्त मिसाल है। साथ ही यह धर्मनिरपेक्ष और लोकाभिमुख मनोरंजन की विधा जन सांस्कृतिक उत्थान का स्त्रोत और संप्रेषण का माध्यम भी बनी हुई है। इस साझी विरासत को हमें महफूज़ ही नहीं रखना है बल्कि आगे भी बढ़ाना है।

एक संघर्षरत दलित युवती की कहानी

कान्ति

कान्ति कानून की छात्रा है। कान्ति ने जानबूझकर समाज सेवा का रास्ता चुना है। उसे विश्वास है कि दलित समाज के लोग उसके दलित होने के कारण जरूर उसकी बातें सुनेंगे और मानेंगे। कान्ति का प्रण है कि वो जीवन भर मैला ढोने के खिलाफ काम करेगी और कानूनी लड़ाई लड़ेगी। वह खुद भी दलित आन्दोलन से जुड़ेगी तथा अपनी और बहनों को जोड़ेगी। घर में उसकी माँ और उसकी शादी-शुदा बहन दोनों मैला ढोती हैं। मजबूरी में कान्ति ने भी मैला ढोया है। जब बारहवीं पास की तो आगे दाखिला लेने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। नौकरी के नाम पर कान्ति को देवास के सैन्ट्रल स्कूल में टायलेट साफ करना पड़ा। जब स्कूल की प्रधानाचार्य को पता चला कि उसके स्कूल में एक पढ़ी-लिखी बच्ची टायलेट साफ कर रही है तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। प्रधानाचार्या ने कान्ति की खूब प्रशंसा की तथा आगे पढ़ाई जारी रखने की हौसला अफजाई की। कान्ति पार्ट-टाईम काम करके कानून की पढ़ाई कर रही है। कानून की पढ़ाई करने के पीछे भी उसका खास मकसद है। वह वकील बनकर अपनी जाति पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ मजबूती से लड़ना चाहती है। उसका गली-गली घूमना, संगठन बनाना उसके माता-पिता और मुहल्ले वालों को पसन्द नहीं पर वह उनसे लड़कर नहीं बल्कि उनको प्यार से समझाती है कि जब तक हमारे लोग खुद अपने लिए काम नहीं करेंगे तब तक हमारा उद्धार नहीं होगा। कान्ति अब तक अनेक सफाई कर्मचारी औरतों को मैला ढोना छुड़वा चुकी है। वह सफाईकर्मियों के घर जाकर उनको जूठन न खाने के लिए कहती है। उसको विश्वास है कि एक न एक दिन उसकी जाति की हालत सुधरेगी और सब लोग इनसान की तरह जी पायेंगे। उसका ध्यान खासतौर पर वाल्मीकि महिलाओं पर है। ये औरतें भी कान्ति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर मैला ढोने के खिलाफ एकजुट हो रही हैं।

कान्ति धीरे-धीरे उनकी नेता के रूप में तबदील हो रही हैं। कान्ति गुस्से से इस साफ-सुथरे समाज को चुनौती देती हुई कहती है ये आखिर हमारी कौम पर ही क्यों दाग है ? क्यों हमारी औरतें ही सर पर टोकरी लिये दूसरों का मैला उठाएँ ? क्यों नहीं हमें इस काम से मुक्ति मिलती ? आज कान्ति अपने साथ अपने समाज के युवाओं को जोड़ रही है और इस निर्मम बेरहम समाज का तोड़ खोज रही है।

'कथादेश' से साभार

दक्षिण-एशिया की साझी विरासत पर जहानआरा परवीन से एक साक्षात्कार

(जहानआरा परवीन बांग्लादेश में एक जानी मानी सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं)

इस साक्षात्कार की आवश्यकता उस समय पड़ी जब पाकिस्तान से साझी विरासत पर कार्यशाला में सहभागिता निभाने आए हुए समूह ने बांग्लादेश के साथियों के साथ वालीबॉल खेलना चाहा और बांग्लादेश के साथियों ने इंकार कर दिया। लगभग यही रवैया पाकिस्तान के साथियों के प्रति बांग्लादेश के आम नागरिकों का रहा। इसीलिए ये साक्षात्कार पाकिस्तान व बांग्लादेश के बीच नफरत व प्यार, पूर्वाग्रह, दोस्ती, सामान्य व भिन्न मूल्य और साझी विरासत के तत्वों को उभारने की दृष्टि से किया गया। इस साक्षात्कार का उद्देश्य दोनों देशों के बीच साझी विरासत, इतिहास और भावी संभावनाओं को तलाश करना था। पाकिस्तान के शांतिकर्मी महबूब सदा, परवेज मोब्बत, फॉदर सोहेल भट्टी और साजिद क्रिस्टोफर ने ये साक्षात्कार किया।

जहानआरा परवीन के अनुसार, ''हमारे बड़े-बुजुर्गों, इतिहास और पाठ्य-पुस्तकों से हमें ये पता चला कि पाकिस्तान की सेना और राजनीति में बांग्लादेश के लोगों पर बहुत अत्याचार किये। यही कारण है कि आम बांग्लादेशी नागरिक पाकिस्तानियों के प्रति कड़े रवैये और नफरत का भाव रखता है। इसके चलते दोनों देश के लोगों के बीच दूरी बढ़ी है और दुश्मनी का माहौल तैयार हुआ है।''

अपने परिवार के बारे में जहानआरा परवीन ने बताया कि उनके परिवार में तीन बहनें और एक भाई है। पिता एक अध्यापक थे और माँ घर संभालती हैं। जहानआरा परवीन का परिवार एक मध्यवर्गीय परिवार है जो कि परम्परागत् संस्कृति, मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं से गहरा रिश्ता रखता है। उन्होंने आगे बताया, ''बांग्लादेश में साक्षरता लगभग 64 प्रतिशत है और महिलाओं को काफी कुछ आज़ादी मिली हुई है। हाल के दिनों में अंर्तजातीय व अंर्तधार्मिक विवाहों में वृद्धि हुई है जो कि एक अच्छा लक्षण है और भविष्य में लोगों को जोड़ने का एक माध्यम बन सकता है।''

पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश को एक देश के रूप में उभरने पर किए गए सवाल के जवाब में जहानआरा ने कहा, ''भाषा और सांस्कृतिक पहचान मुख्य मुद्दे थे जिनके इर्द-गिर्द बांग्ला लोग एक अलग देश की मांग पर जुड़े, बाद के दिनों में अन्याय के विरोध में इस जुड़ाव ने स्वतंत्रता आंदोलन का रूप ले लिया। 1971 की घटना को हम स्वाधीनता का नाम देते हैं। हमारे माँ-बाप, स्वतंत्रता सेनानी, मीड़िया, फिल्म, थियेटर, पाठ्यक्रम और अन्य तथ्य जो कुछ हमें बताते हैं उनसे हमारे अन्दर पाकिस्तान के प्रति नफरत की भावना जगती है। ये भावना तमाम बांग्लादेश के नागरिकों में एक समान है।''

इस्लामिक राष्ट्र (पाकिस्तान व बांग्लादेश) होने के समान मुद्दे पर प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, ''हमारी आज़ादी का मुद्दा इस्लाम नहीं था। बांग्लादेश में बड़ी संख्या में हिन्दू, बौद्ध एवं अन्य धर्मों के लोग मौजूद हैं लेकिन वे सभी बंगाली हैं। हमारा मुख्य मुद्दा भाषा व साँस्कृतिक पहचान तथा पाकिस्तान की निरंकुश सेना सत्ता से छुटकारा पाना था।''

साझी विरासत के संदर्भ में उन्होंने कहा, ''साझी विरासत पर प्रशिक्षण कार्यशाला ने पाकिस्तान के लोगों के प्रति मेरी धारणा बदल दी है। मेरे अंदर पाकिस्तान के लोगों के प्रति गहरी नफरत और अनेक नकारात्मक भावनाएं मौजूद थीं लेकिन सहिष्णुता, स्वीकारने की शिक्षा और साझी विरासत ने अपने विचार बदलने में मेरी बहुत मदद की। राजनैतिक तनावों से परे हमारे पास बहुत सारी साझा चीजें मौजूद हैं जोकि हमारी सबकी साझी विरासत हैं। आज मेरा अट्टू विश्वास है कि एक नई दुनिया संभव है। मेरा गहरा विश्वास है कि साझी विरासत जोकि पूरे दक्षिण-एशिया के लिए समान है, इस कार्य में हमारी सबकी मदद करेगी।''

नई नस्ल की मानसिकता बदलने पर किये गए प्रश्न के उत्तर में जहानआरा परवीन ने कहा, ''इस बात की गहरी आवश्यकता है कि सियाह राजनैतिक इतिहास की जगह नई नस्ल को साझी विरासत पर शिक्षित किया जाए। साथ ही मेरा ये भी मानना है कि मौजूदा दो पीढ़ियों के साथ ये कार्य दुष्कर है क्योंकि उनके दिमाग में 1971 की घटनाएं अभी ताज़ा हैं। लेकिन निकट भविष्य में नई नस्ल के साथ कार्य किया जाना चाहिए जिससे कि वे शांति व सद्भाव के माहौल में जी सके। इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षा व्यक्तिगत स्तर से शुरू होकर सामूहिकता का रूप ले और पूरा वातावरण बदलने में सहायक बने।''

व्यक्तिगत स्तर पर जहानआरा परवीन ने बताया, ''मैं दक्षिण-एशिया की साझी विरासत को आम लोगों को जोड़ने और नई नस्ल के बीच गहरे रिश्ते तैयार करने के लिए एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने के लिए प्रतिबद्ध हूं। शांति बाहर से नहीं आती है। ये अंदर से ही उभरती है। आइए हम सब मिलकर शांति की तलाश करें और एक शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना करें।''

कस्तूरी कुण्डली बसे

उर्दू-हिंदी के महान कथाकार प्रेमचंद की इस वर्ष 125वीं जयंती मनाई जा रही है। इस बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक ने 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक के साथ-साथ अनुवाद और बाल-साहित्य आदि के क्षेत्र में योगदान दिया। 'समरथ' के इस अंक में कृतज्ञता के साथ इस महान लेखक की एक कृति आपके सामने रख रहे हैं।

सवा सेर गेहूँ

प्रेमचंद

किसी गरीब गांव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा-सादा, गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में न देने में। छक्का-पंजा न जानता था, छल-प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी। ठगे जाने की चिंता न थी, ठगविद्या न जानता था। भोजन मिला, खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला, तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा। किंतु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था, तो उसे इस निवृत्ति-मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेषकर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे, तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था, पर साधु को कैसे भूखा सुलाता, भगवान के भक्त ठहरे।

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीतांबर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमण्डल हाथ में, खड़ाऊं पैर में, ऐनक आंखों पर, संपूर्ण वेष उन महात्माओं का सा था, जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता ? प्राचीनकाल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्प्राप्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्माजी को क्या खिलाऊं ? आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूं का आटा उधार लाऊं, पर गांव भर में गेहूं का आटा न मिला। गांव के सब मनुष्य ही मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य-पदार्थ कैसे मिलता ? सौभाग्य से गांव के विप्र महाराज के यहां से थोड़े-से मिल गए। उनसे सवा सेर गेहूं उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा ने भोजन किया और लंबी तानकर सोए। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी लिया करते थे। शंकर ने दिल से कहा, सवा सेर गेहू इन्हें क्या लौटाऊं, पंसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूं, यह भी समझ जाएंगे, मैं भी समझ जाऊंगा, चैत में जब विप्रजी पहुंचे तो उन्हें डेढ़ पंसेरी के लगभग गेहूं दिया और अपने को उऋण समझकर उसकी कोई चर्चा न की। विप्रजी ने फिर न मांगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहू चुकाने के लिए मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गए। विप्रजी विप्र से महाजन हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसाने थे, अलग होकर मजूर हो गए थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाए, कितुं परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले, वह फूट-फूटकर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जाएंगे, एक रोएगा तो दूसरा हंसेगा, एक के घर में मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगे, प्रेम का बंधन, खून का बंधन, आज टूटा जाता है। उसने भगीरथ परिश्रम से कुल मर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसका जड़ से उखड़ना देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुंह लपेटकर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त ही जला दिया, मांस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों खाट से न उठा। अब गुजर-बसर कैसे हो ? पांच बीघे के आधे खेत रह गए, एक बैल रह गया, खेती क्या खाक होती ! अंत में यहां तक नौबत पहुंची कि खेती केवल मर्यादा-रक्षा का साधन-मात्र रह गई, जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गए, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा, तो राह में विप्रजी ने टोककर कहा 'शंकर, कल आके अपने बीज-बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहां साढ़े पांच मन गेहूं कब से बाकी पड़े हैं और तू देने का नाम नहीं लेता, क्या हजम करने का मन है क्या ?''

शंकर ने चकित होकर कहा ''मैंने तुमसे कब गेहूं लिए थे, जो साढ़े पांच मन हो गए ? तुम भूलते हो, मेरे यहां किसी का छटांक भर न अनाज है, न एक पैसा उधार।''

विप्र ''इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।''

यह कहकर विप्रजी ने उस सवा सेर गेहूं का जिक्र किया, जो आज के सात वर्ष पहले शंकर को दिए थे, शंकर सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर ! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन-सा काम किया ? जब पोथी-पत्रा देखने, साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ न कुछ 'दक्षिना' ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ ! सवा सेर अनाज को अंडे की भांति सेकर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल ही जाएगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेहू तौलकर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप साधे बैठे रहे ! बोला ''महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर, दो-दो सेर दिया है। अब आप आज साढ़े पांच मन मांगते हैं, कहां से दूंगा ?''

विप्र ''लेखा जौ जौ, बखसीस सौ सौ। तुमने जो कुछ दिया

होगा, उसका कोई हिसाब नहीं, चाहे एक की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पांच मन लिखा हुआ है, जिससे चाहे हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेक दूं, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।''

शंकर ''पांडे, क्यों एक गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूं किसके घर से लाऊंगा ?''

विप्र ''जिसके घर से चाहे लाओ, मैं छटांक भर भी न छोड़ूंगा। यहां न दोगे, भगवान के घर तो दोगे ?''

शंकर कांप उठा। हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे; वहां की तौल यहां से कुछ बड़ी तो न होगी। कम से कम कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किंतु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार-चतुर न था। एक तो ऋण वह भी ब्राह्मण का बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊंगा, इस ख्याल ही से उसे रोमांच हो गया। बोला ''महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूंगा, ईश्वर के यहां क्यों दूं ? इस जन्म में तो ठोकर खा ही रहा हूं, उस जन्म के लिए क्यों कांटे बोऊं ? मगर यह कोई नियाव नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया, ब्राह्मण होके तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझा क्यों पड़ता ? मैं तो दूंगा, लेकिन भगवान के यहां जवाब देना पड़ेगा।''

विप्र ''वहां का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहां तो सब अपने ही भाई-बंधु हैं। ऋषि-मुनि, सब तो ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने-बिगड़ेगी, संभाल लेंगे। तो कब देते हो ?''

शंकर ''मेरे पास रक्खा तो है नहीं, किसी से मांग-जांचकर लाऊंगा, तभी न दूंगा !''

विप्र ''मैं न मानूंगा। सात साल हो गए, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूंगा। गेहूं नहीं दे सकते, दस्तावेज लिख दो।''

शंकर ''मुझे तो देना है, चाहे गेहूं लो चाहे दस्तावेज लिखाओ, किस हिसाब से दाम रक्खोगे ?''

विप्र ''बाजार भाव पांच सेर का है, तुम्हें सवा पांच सेर का काट दूंगा।''

शंकर ''जब दे ही रहा हूं, तो बाजार-भाव काटूंगा, पाव भर छुड़ाकर क्यों दोषी बनूं ?''

हिसाब लगाया तो गेहू के दाम 60 रुपये हुए। 60 रुपये का दस्तावेज लिखा गया। 3 रुपये सैकड़े सूद। साल भर में न देने पर सूद का दर साढ़े तीन रुपये सैकड़े, बाहर आने का स्टांप, 1 रुपये दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गांव भर ने विप्रजी की निंदा की, लेकिन मुंह पर नहीं। महाजन से सभी का काम पड़ता है, उसके मुंह कौन आए।

शंकर ने साल भर तक कठिन तपस्या की; मीयाद के पहले रुपये अदा करने का उसने व्रत-सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ, केवल लड़के के लिए रात को रोटियां रख दी जातीं। पैसे रोज का तंबाकू पी जाता था, यही एक व्यसन था जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत की भेंट हो गया। उसने चिलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तंबाकू की हांडी चूर-चूर कर डाली। कपड़े पहले भी त्याग कर चरम सीमा तक पहुंच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गए। शिशिर की अस्थि-बेधक शीत को उसने आग तापकर काट दिया। इस ध्रुव-संकल्प का फल आशा से बढ़कर निकला। साल के अंत में उसके पास 60 रुपये जमा हो गए। उसने समझा, पंडित जी को इतते रुपये दे दूंगा और कहूंगा महाराज, बाकी रुपये भी जल्द ही आपके सामने हाजिर करूंगा। 15 रुपये की तो और बात है, क्या पंडितजी इतना भी न मानेंगे ? उसने रुपये लिए और ले जाकर पंडितजी के चरण-कमलों पर अर्पण कर दिए। पंडितजी ने विस्मित होकर पूछा ''किसी से उधार लिए क्या ?''

शंकर ''नहीं महाराज, आपके असीस से अबकी मजूरी अच्छी मिली।''

विप्र 'लेकिन यह तो 60 रुपये ही हैं !''

शंकर ''हां महाराज, इतने अभी ले लीजिए, बाकी मैं दो-तीन महीने में दे दूंगा, मुझे उरिन कर दीजिए।''

विप्र 'उरिन तो तभी होगे जब मेरी कौड़ी-कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे 15 रुपये और लाओ।''

शंकर ''महाराज, इतनी दया करो, अब सांझ की रोटियों का भी ठिकाना नहीं है, गांव में हूं तो कभी दे ही दूंगा।''

विप्र 'मैं यह रोग नहीं पालता, न बहुत बातें करना जानता हूं। अगर मेरे पूरे रुपये न मिलेंगे तो आज से साढ़े तीन रुपये सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रुपये चाहे अपने घर में रक्खो, चाहे मेरे यहां छोड़ जाओ।''

शंकर ''अच्छा, जितना लाया हूं, उतना रख लीजिए। मैं जाता हूं, कहीं से 15 रुपये और लाने की फिक्र करता हूं।''

शंकर ने सारा गांव छान मारा, मगर किसी ने रुपये न दिए, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रुपये न थे, बल्कि इसीलिए कि पंडित के शिकार को छेड़ने की किसी की हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर भी जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका, तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणत हो गया। उसने समझ लिया कि अब इतना कष्ट सहने पर भी साल में 60 रुपये से अधिक जमा न कर सका, तो अब और कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा इससे दूने रुपये जमा हों। जब सिर पर ऋण का बोझ ही लादना है, तो क्या मन भर का और क्या सवा मन का ? उसका उत्साह क्षीण हो गया, मिहनत से घृणा हो गई। आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही की संचालक-शक्ति है।

शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह जरूरतें, जिनको उसने साल भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियां थीं, जो अपनी भेंट लिए बिना जान नहीं छोड़तीं। कपड़ों में चकत्तियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रुपये जमा न करता, कभी कपड़े लाता, कभी खाने की कोई वस्तु। जहां पहले तमाखू ही पिया करता था, वहां

अब गांजे चरस का चस्का भी लगा। उसे अब रुपये अदा करने की कोई चिंता न थी, मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा भी नहीं आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था, अब काम न जाने के लिए बहाना खोजा करता।

इस भांति तीन वर्ष निकल गए। विप्रजी महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भांति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार को चौंकाना उनकी नीति के विरुद्ध था।

एक दिन पंडितजी ने शंकर को बुलाकर हिसाब दिखाया 60 रुपये जो जमा थे, वह मिनहा करने पर भी शंकर के जिम्में 120 रुपये निकले।

शंकर ''इतने रुपये तो उसी जन्म में दूंगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।''

विप्र ''मैं इसी जन्म में लूंगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।''

शंकर ''एक बैल है, वह ले लीजिए; एक झोंपड़ी है, वह ले लीजिए और मेरे पास रक्खा क्या है।''

विप्र ''मुझे बैल बधिया लेकर क्या करना है। मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।''

शंकर ''और क्या है महाराज ?''

विप्र ''कुछ नहीं है, तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो, मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना ही पड़ता है। सूद में तुम हमारे यहां काम किया करो, जब सुभीता हो, मूल भी दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रुपये नहीं चुका दो। तुम्हारें पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस एतबार पर छोड़ दूं ? कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे। और कहीं कमाकर जब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे ?''

शंकर ''महाराज, सूद में तो काम करूंगा और खाऊंगा क्या ?''

विप्र ''तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पांव कटाके बैठेंगे ? रहा मैं, तुम्हें आधा सेर जौ रौज कलेवा के लिए दे दिया करूंगा। ओढ़ने को साल में एक कंबल पा जाओगे, एक मिरजई भी बनवा दिया करूंगा, और क्या चाहिए ! यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने रोज देते हैं, लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें अपने रुपये भराने के लिए रखता हूं।''

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा ''महाराज, यह तो जन्म भर की गुलामी हुइ !''

विप्र ''गुलामी समझो, चाहे मजदूरी समझो। मैं अपने रुपये भराए बिना तुमको न छोडूंगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हां, जब कोई न रहेगा तब भी बात दूसरी है।''

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता ? कहीं शरण न थी, भागकर कहां जाता ? दूसरे दिन से उसने विप्रजी के यहां काम करना शुरू कर दिया। सवा सेर गेहूं की बदौलत उम्र भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष हुआ, तो वह यह था कि यह मेरे पूर्व-जन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो कभी न किए थे। बच्चे दाने को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। वह गेहूं के दाने किसी देवता के शाप की भांति यावज्जीवन उसके सिर से न उतरे।

शंकर ने विप्रजी के यहां 120 वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। 120 रुपये अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडितजी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने निर्दयी न थे। उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी। आज तक वह विप्रजी के यहां काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जाने।

पाठक ! इस वृत्तांत को कपोल-कल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।

साथियों,

हम उम्मीद करते हैं कि आई.एस.डी. का न्यूज़लैटर 'समरथ' आपको नियमित रूप से मिल रहा है। हम चाहते हैं कि आप 'समरथ' पर अपनी आलोचना, प्रतिक्रियाएं और सुझाव भेजें वो चाहे विषयों के चयन पर हो या फिर भाषा और शैली को लेकर। साथ ही ये भी बताएँ कि आप किन और विषयों को 'समरथ' में जोड़ना चाहेंगे। ये हमें 'समरथ' को और भी उपयोगी बनाने में मदद करेगा। हमें आपके ख़तों का इंतज़ार रहेगा। सधन्यवाद।

आई.एस.डी.

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस,
62–ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका
नई दिल्ली–110067
टेलीफैक्स : 011–26177904
ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए